उत्तमकुमार चरित्र

लेखक

नरेन्द्र सिंह जैन

संपादक

मुनिश्री जयानंद विजयजी

उपलब्धी स्थान

शाह देवीचंद छगनलालजी

सुमति दर्शन नहेरुपार्क के पास

माध कोलोनी भीनमाल ३४३०२९ (राज.)

फोन : (०२९६९) २२०३८७

श्री आदीनाथ राजेन्द्र जैन पेढी

साँथू-३४३०२६

जी. जालोर (राज.)

फोन (०२९७३) २५४२२१

श्री विमलनाथ जैन पेढी

बाकरा गाँव-३४३०२५ (राज.)

फोन : (०२९७३) २५११२२, ९४१३४६५०६८

महाविदेह भीनमाल धाम

तलेटी हस्तिगिरि लिंक रोड,

पालीताणा-३६४२७०

फोन : (०२८४८) २४३०१८

श्री तीर्थेन्द्र सूरि स्मारक ट्रस्ट

तीर्थेन्द्रनगर, बाकरा रोड,

वाया बागरा-३४३०२५ जी. जालोर

फोन नं. : (०२९७३) २५११४४

॥ श्री मांही पार्श्वनाथाय नमः ॥

॥ प्रभु श्रीराजेन्द्रसूरीश्वराय नमः ॥

॥ उत्तमकुमार चरित्र ॥

: दिव्याशीष :

श्री विद्याचंद्रसूरीश्वरजी
श्री रामचंद्र विजयजी

: लेखक :

नरेन्द्रसिंह जैन

: संपादक :

मुनि जयानंद विजय

: प्रकाशक :

गुरुश्री रामचंद्र प्रकाशन समिति - भीनमाल

: मुख्य संरक्षक :

लेहर कुंदन ग्रुप

मुंबई, दिल्ली, चेन्नई, हरियाणा

श्रीमती गेरोदेवी जेठमलजी बालगोता-मेंगलवा द्वारा
मुनिश्री जयानंद विजयजी आदि ठाणा की निश्रा में शत्रुंजय तीर्थे २०६५में
चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस निमित्ते....

एक सद्गृहस्थ - भीनमाल

संरक्षक

(१) सुमेरमल केवलजी नाहर, भीनमाल, राज.
के.एस. नाहर, २०१, सुमेर टावर, लव लेन, मझगांव, मुंबई-१०.

(२) मीलियन ग्रुप, सुराणा, मुंबई, दिल्ही, विजयवाडा

(३) एम.आर. इम्पेक्स, १६-अे, हनुमान टेरेस, दूसरा माला, ताराटेम्पल लेन, लेमीग्नट रोड, मुंबई-७, फोन: २३८०१०८६

(४) श्री शांतिदेवी बाबुलाल बाफना चेरीटेबल ट्रस्ट मुंबई, महाविदेह भीनमालधाम, पालीताणा-३६४२७०

(५) संघवी जुगराज, कांतिलाल, महेन्द्र, सुरेन्द्र, दिलीप, धीरज, संदीप, राज, जैनम, अक्षत, बेटा पोता कुंदनमलजी भुताजी श्रीश्रीमाळ, वर्घामान गौतीय आहोर (राज.) कल्पतरु ज्वेलर्स, ३०५ स्टेशन रोड, संघवी भवन, थाना(५) महाराष्ट्र.

(६) शत्रुंजय तीर्थे मुनिश्री जयानंद विजयजी की निश्रामें नव्वाणुं यात्रा के आयोजन निमित्ते शा. जेठमल, लक्ष्मणराज, पृथ्वीराज, प्रेमचंद, गौतमचंद, गणपतराज, ललीतकुमार, विक्रमकुमार, पुष्पक, विमल, प्रदीप, चिराग, नितेष बेटा-पोता कीनाजी संकलेचा परिवार मेंगलवा, फर्म अरिहन्त नोवेल्हटी, ्स्न३ आरती शोपींगसेन्टर, कालुपुर टंकशाला रोड, अहमदाबाद, पृथ्वीराज अेन्ड कं. तिरुचिरापली.

(७) थराद निवासी भणशाळी मधुबेन कांतिलाल अमुलखभाई परिवार.

(८) शा कांतिलाल केवलचंदजी गांधी सियाना निवासी द्वारा २०६३में पालीताना में उपधान करवाया उस निमित्ते.

(९) लहेर कुंदन ग्रुप शा जेठमलजी कुंदनमलजी मेंगलवा (जालोर)

(१०) २०६३ में गुडामें मुनिश्री जयानंद विजयजी का चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस समय पद्मावती सुनाने के उपलक्ष में शा चंपालाल, जयंतिलाल, सुरेशकुमार, भरतकुमार, प्रिन्केश, केनित, दर्शित चुन्नीलालजी मकाजी काशमगौत्र त्वर परिवार गुडाबालोत्तान् जयचिंतामणि १०-५४३ संतापेट नेल्लूर ५२४००१ (आ.प्र.)

(११) पूं. पिताजी पूनमचंद्रजी मातुश्री भुरीबाई के स्मरणार्थ पुत्र पुखराज, पुत्रवधु लीलाबाई पौत्र फुटरमल, महेन्द्रकुमार, राजेन्द्रकुमार, अशोककुमार, मिथुन, संकेश, सोमील, बेटा पोता परपोता शा. पूनमचंद्रजी भीमाजी रामाणी गुडाबालोतान नाकोडा गोल्ड ७०, कंसारा चाल, बीजामाले रुमनं. ६७, कालबादेवी, मुंबई-२

(१२) शा सुमेरमल, मुकेशकुमार, नितीन, अमीत, मनीषा, खुशबु बेटा पोता पेराजमलजी प्रतापजी रतनपुरा बोहरा परिवार, मोदरा (राज.) राजरतन गोल्ड प्रोड., के.वी. एस. कोम्प्लेक्ष, ३१ अरुंडलपेट, गुन्टुर A.P.

(१३) एक सद्गृहस्थ, धाणसा.

(१४) गुलाबचंद डॉ. राजकुमार पुत्र-पौत्र छगनलालजी कोठारी (आहोर) एटलांटिका अमेरीका.

(१५) शांतिरुपचंद रवीन्द्रचन्द्र, मुकेश, संजेश, ऋषभ, लक्षित, यश, ध्रुव, अक्षय बेटा पोता मिलापचंदजी मेहता, फोलावास ,जालोर-बेंगलोर.

(१६) वि.सं. २०६३ में आहोर में उपाधान तप आराधना करवाया एवं पद्मावती श्रवण के उपलक्ष में पिताश्री थानमलजी मातुश्री सुखीदेवी, भंवरलाल, घेवरचंद, शांतिलाल, प्रवीणकुमार, मनीष, निखिल, मित्तुल, आशीष, हर्ष, विनय, विवेक बेटा पोता कनाजी हकमाजीमुथा शा. शांतिलाल प्रवीणकुमार एण्ड को. राम गोपाल स्ट्रीट, विजयवाडा. भीवंडी, ईचलकरंजी.

(१७) बाफना वाडी में जिन मन्दिर निर्माण के उपलक्ष में मातुश्री प्रकाशदेवी चंपालालजी की भावनानुसार, पृथ्वीराज, जितेन्द्रकुमार, राजेशकुमार, रमेशकुमार, वंश, जैनम, राजवीर, बेटा-पोता चंपालाल सांवलचन्द्रजी बाफना, भीनमाल. नवकार टाईम, ५९, नाकोडा स्टेट न्यु बोहरा बिल्डींग, मुंबई-३

(१८) शा शांतिलाल, दीलीपकुमार, संजयकुमार, अमनकुमार, अखीलकुमार बेटा पोता मूलचंदजी उमाजी तलावत आहोर (राज.) राजेन्द्र मार्केटींग, ११-३०-८,Sheshies St., Rajendra Complex विजयवाडा-५२००१.

(१९) श्रीमती सकुदेवी सांकलचंदजी नेथीज हुकमाणी परिवार, पांथेडी, राज. राजेन्द्र ज्वेलर्स, ४ रहेमान भाई बि. एस.जी. मार्ग, ताडदेव, मुंबई-३४

(२०) पूज्य पिताजी श्री सुमेरमलजी की स्मृतिमें मातुश्री जेठीबाई की प्रेरणा से जयन्तिलाल महावीरचंद दर्शन बेटा पोता सुमेरमलजी वरदीचंदजी आहोर, जे.जी. ईम्पक्स प्रा. लि.-५५ नारायण मुदली स्ट्रिट, चेन्नई-७९.

(२१) स्व. हस्तीमलजी भलाजी नागोत्रा सोलंकी की स्मृति में हस्ते परिवार बाकरा(राज.)

(२२) मुनिश्री जयानंद विजयजी की निश्रामें लेहर कुंदन ग्रुप द्वारा शत्रुंजय तीर्थ २०६५ में चातुमॉस उपधान करवाया उस समय के आराधक एवं अतिथि के सर्व साधारण की आय में से.

(२३) मातुश्री मोहीनीदेवी पिताश्री सोवलचंदजी की पुण्य स्मृति में शा. पारसमल, सुरेशकुमार, दिनेशकुमार, कैलासकुमार, जयंतकुमार, बिलेश, श्रीकेष, दिक्षिल, पीष. कबीर, बेटा पोता सोवलचंदजी कुंदनमलजी बालगोता, मेंगलवा, फाईब्रोस, कुंदन ग्रुप, ३५ पेरुमल मुदली स्ट्रीट, साहुकार पेट, चेन्नई-१, दिल्ही-मुंबई,

(२४) शा. सुमेरमलजी नरसाजी - मेंगलवा, चेन्नई.

(२५) शा दूधमलजी, नरेन्द्रकुमार, रमेशकुमार बेटा पोता लालचंदजी मांडोत परिवार बाकरा (राज.) मंगल आर्ट, दोशी बिल्डींग, ३-भोईवाडा, भूलेश्वर, मुंबई-२

(२६) कटारीया संघवी लालचंद, रमेशकुमार, गौतमचंद, दिनेशकुमार, महेन्द्रकुमार, रवीन्द्रकुमार बेटा पोता सोनाजी भेराजी धाणसा (राज.) श्री सुपर स्पेएर्स, ११-३१-३ पार्क रोड, विजयवाडा, सिकन्द्राबाद.

(२७) शा नरपतराज, ललीतकुमार, महेन्द्र, शैलेष, निलेष, कल्पेश, राजेश, महीपाल, दिक्षीत, आशीष, केतन, अश्वीन, रीकेश, यश, मीत, बेटा पोता खीमराजजी थानाजी कटारीया संघवी आहोर (राज.) कलांजली ज्वेलर्स, ४/२ ब्राडी पेठ, गुन्टूर-२

(२८) शा लक्ष्मीचंद, शेषमल, राजकुमार, महावीरकुमार, प्रवीणकुमार, दीलीपकुमार, रमेशकुमार, बेटा पोता प्रतापचंदजी कालुजी कांकरीया मोदरा (राज.) गुन्टूर

(२९) एक सद्‌गृहस्थ (खाचरौद)

(३०) श्रीमती सुआदेवी घेवरचंदजी के उपधान निमित्ते चंपालाल, दिनेशकुमार, धर्मेन्द्रकुमार, हितेशकुमार, दिलीप, रोशन, नीखील, हर्ष, जैनम, दिवेश बेटा पोता घेवरचंदजी सरेमलजी दुर्गाणी बाकरा हितेन्द्र मार्केटींग, ११-X-२- Kashi चेटी लेन, सत्तर शाला कोम्प्लेक्स, पहेला माला, चेन्नई-७९.

(३१) मंजुलाबेन प्रवीणकुमार पटीयात के मासक्षमण एवं स्व. श्री भंवरलालजी की स्मृति में प्रवीणकुमार, जीतेशकुमार, चेतन, चिराग, कुणाल, बेटा पोता तिलोकचंदजी धर्माजी पटियात धाणसा, पी.टी. जैन, रोयल सम्राट, ४०६-सी वींग, गोरेगांव (वेस्ट) मुंबई-६२

(३२) गोल्ड मेडल ईन्डस्ट्रीस प्रा.ली., रेवतडा, मुंबई, विजयवाडा, दिल्ली.

(३३) राज राजेन्द्र टेक्सटाईल्स, एक्सपोर्टस लिमीटेड, १०१, राजभवन, दोलतनगर, बोरीवली (ईस्ट), मुंबई, मोधरा निवासी.

(३४) प्र. शा. दी.सा. श्री मुक्तिश्रीजी की शिष्या वि.सा. श्री मुक्तिदर्शिताश्रीजी की प्रेरणा से स्व. पिताजी दानमलजी, मातुश्री तीजोदेवी की पुण्य स्मृति में चंपालाल, मोहनलाल, महेन्द्रकुमार, मनोजकुमार, जितेन्द्रकुमार, विकासकुमार, रविकुमार, रिषभ, मिलन, ह्रितिक, आहोर, कोठारी मार्केटींग १०/११, चितुरी कोम्प्लेक्ष, विजयवाडा-१

(३५) पिताजी श्री सोनराजजी, मातुश्री मदनबाई कटारिया संघवी परिवार आयोजित सम्मेत शिखर यात्रा प्रवास एवं जीवित महोत्सव निमित्ते दीपचंद, अशोककुमार, प्रकाशकुमार, राजेशकुमार, संजयकुमार, विजयकुमार, बेटा-पोता सोनराजजी मेघाजी धाणसा, अलका स्टील, ८५७, भवानी पेठ, पूना-५२

(३६) मुनि श्री जयानंद विजयजी आदी ठाणा की निश्रा में संवत २०६६ में तीर्थेन्द्र नगरे बाकरा रोड मध्ये चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस निमित्ते हस्ते श्रीमती मैतीदेवी पेराजमलजी रतनपुरा वोहरा परिवार-मोधरा (राजस्थान).

(३७) मुनि श्री जयानंद विजयजी आदि की निश्रा में संवत २०६२ में पालीताना में चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस निमित्ते शांतीलाल, बाबुलाल, मोहनलाल, अशोककुमार विजयकुमार, श्री हंजादेवी सुमेरमलजी नागोरी परीवार-आहोर.

(३८) संघवी कांतिलाल, जयंतिलाल, गणपतराज, राजकुमार, राहुलकुमार, समस्त श्रीश्रीश्रीमाल गुडाल गोत्र फुआनी परिवार आलासण संघवी ईलेकट्रीक्स कंपनी, ८५, नारायण मुदली स्ट्रीट, चेन्नई-६०००७९.

(३९) शा भंवरलाल जयंतिलाल, सुरेशकुमार, प्रकाशकुमार, महावीरकुमार, श्रेणिककुमार, प्रितम, प्रतीक, साहील, पक्षाल बेटा पोता-परपोता शा समरथमलजी सोगाजी दुरगाणी बाकरा (राज.) जैन स्टोर्स, स्टेशन रोड, अंकापली-५३१००१

(४०) शा समरथमल, सुकाराज, मोगनलाल, महावीरकुमार, विकासकुमार, कमलेश, अनिल, विमल, श्रीपाल, भरत फोला मुथा परिवार, सायला (राज.), अरुण अेन्टरप्राईजेस, ४ लेन, ब्राडी पेठ, गुन्टूर-२

(४१) शा. कान्तीलालजी, मंगलचन्दजी हरण, दासपा, मुंबई.

(४२) शा गजराज, बाबुलाल, मीठालाल, भरत, महेन्द्र, मुकेश, शैलेस, गौतम, नीखील, मनीष, हनी बेटा-पोता रतनचंदजी नागौत्रा सोलंकी, साथूं (राज.) फूलचंद भंवरलाल,१८०, गोवीदाप्पा नायक स्ट्रीट, चेन्नई-१

(४३) बह्लु गगनदास विरचंदभाई परिवार-थराद

(४४) श्रीमती मंजुलादेवी भोगीलाल वेलचंद संघवी-धानेरा निवासी फेन्सी डायमन्ड, ११, श्रीजी आरकेड, प्रसाद चेम्बर्सनी पाछळ, टाटा रोड नं. १-२, ओपेरा हाउस, मुंबई-४.

(४५) भंसाली भंवरलाल, अशोककुमार, कांतिलाल, गौतमलाल, राजेशकुमार, राहुल, आशीष, नमन, आकाश, योगेश, बेटा-पोता लीलाजी कसनाजी, मु सुरत फर्म : मंगल मोती सेन्डीकेट, १४ १५, एस.एस. जैन मार्केट, एम. पी. लेन, चीकपेट क्रोस, बेंगलोर-५३

(४६) संघवी भंवरलाल, मांगीलाल, महावीर नीलेश, बन्टी, बेटा-पोता हरकचंदजी श्री श्रीमाल परिवार आलासन, राजेश ईलेक्ट्रीकल्स, ४८, राजा बिल्डींग, तिरुनेलवेली-६२७ ००१.

सह संरक्षक

(१) १९९२ में बस यात्रा प्रवास, १९९५ में अठ्ठाई महोत्सव एवं संघवी सोनमलजी के आत्मश्रेयार्थे नाणेशा परिवार के प्रथम सम्मेलन के लाभ के उपलक्ष्य में संघवी भबुतमल. जयंतिलाल, प्रकाशकुमार, प्रविणकुमार,नवीन, राहुल,अंकुश,रितेश,नाणेशा, प्रकाश, नोवेल्टीझ, सुन्दर फर्नीचर, ७९४, सदाशीव पेठ, बाजीराव रोड, पूना-४११०३० (सियाणा)

(२) शा तीलोकचंद मयाचंद एन्ड कं., ११६ गुलालवाडी, मुंबई-४.

(३) स्व. मातुश्री मोहनदेवी पिताश्री गुमानमलजी की स्मृति में पुत्र कांतिलाल, जयंतिलाल, सुरेश, राजेश, सोलंकी-जालोर. प्रविण एन्ड कं., १५-८-११० २, बेगम बाजार, हैदराबाद-१२

(४) श्रीमती फेन्सीबेन सुखराजजी चमनाजी कबदी धाणसा, गोल्डन कलेकशन, नं-५, चांदी गली, तीसरा भोईवाडा, भूलेश्वर, मुंबई-२.

(५) शा भंवरलाल, सुरेशकुमार, शैलेषकुमार, राहुल बेटा-पोता तेजराजजी संघवी, कोमतावाला-भीनमाल, एस.के. मार्केटींग, राजरतन ईलेक्ट्रीकल्स, के.सी. आई., वायर्स प्रा.लि., १६३ गोविंदाप्पा, नायकन स्ट्रीट, चेन्नई-६०० ००१.

(६) शा जेठमलजी सागरमलजी की स्मृति में मुलचंद, महावीरकुमार, आयुषी, मेहुल, रियान्सु, डोली, प्रागणी ग्रुप-संखलेचा, मेंगलवा, राज रतन एसेंबली वकर्स, १४६ ११६९ मोतीलाल नगर नं.-१, साई मंदिर के सामने रोड नं-३ गोरेगांव (वेस्ट), मुंबई-१०४, संखलेचा मार्केटींग, ११-१३-१६, समाचारवारी स्ट्रीट, विजयवाडा-१.

(७) सुबोधभाई उत्तमलाल महेता-धानेरा निवासी.

(८) पू. पिताजी ओरमलजी मातुश्री अतीयोबाई एवं धर्मपत्नि पवनीदेवी के आत्मश्रेयार्थ - किशोरमल प्रवीणकुमार (राजू) अनिल, विकास, राहुल, संयम, एवं ऋषभ डोसी चौपडा परिवार आहोर फर्म श्री राजेन्द्र स्टील हाउस गुंटुर

उत्तमकुमार

प्रथम परिच्छेद

गंगा तट का आनन्द

लेखक - नरेन्द्रसिंह जैन

गंगा नदी अपने उत्ताल तरंगों की गर्जना से तट भूमि को गुञ्जारित कर रही थी। तट पर रहे हुए वृक्षों के कुञ्ज में उनकी प्रतिध्वनि पड़ रही थी। मधुर मन्द - मन्द ध्वनि से उसमें वृद्धि होती जा रही थी। स्थल और जल के प्राणी आकर उस पर विश्राम ले, सरिता की शोभा निरख रहे थे। अनेक आर्यधर्मी श्रद्धालु यात्री आकर भागिरथि के पवित्र जल में स्नान कर रहे थे। प्यासे पथिक गण गङ्गा के शीतल जल का पान कर अगल - बगल में भ्रमण करते हुए शीतल वायु की मन्द-मन्द लहरें ले रहे थे। त्यागी तपस्वी लोग तट भूमि पर पंक्ति बद्ध बैठे हुए तपस्या कर रहे थे।

इसी समय उसके तट पर रहे हुए एक सुन्दर सुशोभित महल में एक रमणी बैठी हुई गंगानदी का अवलोकन कर रही थी और कुदरत - प्रकृति का अनुमोदन कर रही थी। यह सुन्दर रमणी सादी पोशाक में थी। इस पर भी उसके स्वाभाविक सौन्दर्य ने उसे शृङ्गार मय कर दी थी। उसकी मनोवृत्ति में आनन्द की लहरें उछल रहीं थी। उससे प्रतीत हो रहा था कि इस संसार की आधि-व्याधि और उपाधियों से मानों मुक्त हुई हो, वैसे दीख रही थी। उसके ललाट पर धर्म और धन का मिश्रित तेज चमक रहा था। अधिक समय तक सरिता - तट का अवलोकन करने के बाद वह एक पुस्तक पढ़ते - पढ़ते उसमें लीन हो गयी और उसे बार - बार पढ़ने लगी। अनेक बार वांचन, करने के बाद वह आनन्दी अबला अपने मन में निम्न प्रकार चिन्तन करने लगी :-

अहा ! यह संसार असार कहलाता है। तथापि इसमें से अनेक बार आनन्द भी प्राप्त होता है। यदि पुण्य की प्रबलता होती है तो यह संसार स्वर्ग के समान

बन जाता है। संसारी प्राणी यदि इस सांसारिक जीवन को सफल करना चाहें तो इस संसार से भी उन्हें बहुत कुछ आनन्द प्राप्त हो सकता है। संसार समुद्र के मंथन से यदि विष निकलता है तो अमृत भी अवश्य निकलता है।

इस प्रकार विचार मग्न हो जाने से उस प्रौढ़ा रमणी के मुखमण्डल पर आनन्द की आभा झलकने लगी। परन्तु इसी समय "जय हो, महाराजाधिराज की जय हो," यह आवाज सुनकर वह उसी समय वहाँ से उठकर आंगन में चली गयी। वहाँ बहुतेरी दासियों ने आकर निवेदन किया, "महाराणी जी ! सरकार की सवारी आ रही है।" इतने ही में महाराज भी आ पहुँचे। सुन्दरी ने उन्हें सप्रेम अभिवादन किया और वहाँ से वे दोनों महल की चन्द्रशाला में चले गये।

दोनों दम्पती चन्द्र भवन में बैठकर गंगा के नैसर्गिक मनमोहक द्रश्य निरखने लगे। सुन्दरी ने आनन्द विभोर होकर पूछा :-

"प्राणनाथ ! आपने राजकुमार के विषय में कोई हर्ष सम्वाद सुना है ?" "हाँ, सुना तो है ! मैं समाचार सुनाने की इच्छा से ही तुम्हारे पास आया हूँ ! परन्तु प्रिये ! यह बतलाओ कि तुम्हें यह शुभ संवाद किसने कहा ?" राजा ने पूछा।

सुन्दरी ने मुस्कराते हुए कहा :- क्षणपूर्व वह विनीत कुमार मेरे पास आया था और उसके मित्र ने यह बात उसके समक्ष मुझे कह सुनाई थी। प्यारे ! आपके आने के पूर्व मैं प्रसन्न चित्त हो यही विचार कर रही थी और यह सुन्दर संसार दुःख का भण्डार होते हुए भी मैं उसे सुख का सागर मान रही थी। महाराजा ने अभिनन्दन प्रदान करते हुए कहा :-

"प्रिये ! मैं भी यही विचार कर रहा था। इस संसार चक्र में परिवर्तन से सुख और दुःख दोनों उत्पन्न होते हैं, किन्तु जब सुख का उदय होता है, तब दुःख का और जब दुःख का उदय होता है तब सुख का स्मरण होता है। अपना एकाकी कुमार समस्त कलाओं में प्रवीण हो गया और परीक्षा के समय प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ है। इसके समान अन्य आनन्द और क्या ?"

अपनी सन्तती विद्वान, विनयी, विवेकी और कला कुशल हो, यह

कोई सामान्य हर्ष की बात नहीं ? शिक्षित पुत्रों के माता - पिता पुण्यवान और भाग्यशाली गिने जाते हैं । हमारे हाथों में सत्ता है, हमारे विशाल राज्य की बागड़ोर अपने अधिकार में है । हजारों मनुष्य आज्ञा पालने के लिए हाथ बाँध आगे खड़े रहते हैं, सिर पर छत्र और चामर रहता है, और हमारे राज्यकोष में लक्ष्मी नृत्य कर रही है । इतना ऐश्वर्य होते हुए भी राजकुमार का "विद्याविजय" सुनकर मुझे जो आज अपार हर्ष हो रहा है, वह वर्णनातीत है - यदि यह कह दूँ कि "ऐसा आनन्द न किसी को हुआ न होगा" - तो भी कुछ अतिशयोक्ति नहीं होगी । प्रिये ! राजकुमार, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र और व्यवहार शास्त्र की परीक्षा में प्रथम उत्तीर्ण हुआ है । उसके अध्यापकों ने मुक्त कण्ठ से उसकी प्रशंसा की और आशीर्वाद दिया । इतना कलाविद होने पर भी वह विनीत, धार्मिक, दयालु और नीतिज्ञ है, यह एक बड़ी विशेषता है।

प्रिये ! हमारा जन्म, संसार और गृहस्थी जीवन ऐसे सुपुत्र को पाकर धन्य हुआ है । पुत्र के सद्‌गुणों को देखकर मेरा मन - मयूर नृत्य कर रहा है । इसके अतिरिक्त मुझे एक सबसे अपार हर्ष इस बात का होता है कि भविष्य में मेरी प्रजा एक आदर्श राजा को पाकर मुझे भुला सकेगी । सुन्दरी ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा -

प्राणेश ! आपका कहना बिलकुल सत्य है, परन्तु इसका सारा श्रेय आपको है । क्योंकि अपनी संतान का भविष्य निर्माण, पिता पर ही अवलम्बित है । पिता यदि पुत्र को शिक्षित बनाने के लिए प्रयत्नशील हो तो वह बड़ा ही ज्ञानी और कलाकार बन सकता है । अपनी प्यारी संतान को शिक्षारूपी अमृत पान कराने वाला पिता, उसके पालन - पोषण से भी अधिक उपकार करता है । महाराजा ने हँसते - हँसते कहा :-

"सुभगे ! परन्तु इसमें मुझ से कहीं अधिक तुम्हारा उत्तरदायित्व है । बचपन की शिक्षिका तुम्हीं हो । राजकुमार में विवेक, विनय, नम्रता आदि गुणों को पैदा करने वाली तुम्हीं हो । तुम्हारी गोदी में खेलते - खेलते जो गुण राजकुमार ने प्राप्त

किये है। वे गुण पिता या गुरु द्वारा प्राप्त होना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है। तुमने अपने स्तनपान के साथ - साथ उसे गुण - पान भी करवाया है। जिसके कारण राजकुमार विद्वान तथा गुणी बन सका है। जो माता अपने बालक की शिक्षा पर ध्यान नहीं देती वह माता नहीं बल्कि उसकी वैरिणी है।''

इस प्रकार वे दोनों राजकुमार के ज्ञान और कला की बहुत देर तक प्रशंसा करते रहे। इतने ही में समय सूचक सेवक ने आकर निवेदन किया :- ''सरकार ! जिन पूजा का समय हो गया है।'' इतना कहकर सेवक प्रणाम करके लौट गया। महाराजा अपनी रानी सहित वहाँ से उठकर गृह - चैत्य में जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने के लिए चल दिये।

पाठक ! आपको इस कथा के आरम्भ में कुछ जिज्ञासा हुई होगी, अतएव उसे यहाँ स्पष्ट करने की जरूरत है। गंगा किनारे के उस महल में जो सुन्दरी बैठी थी वह वाराणसी नगरी की महाराणी लक्ष्मीवती थी। पीछे से आने वाले वाराणसी - नरेश महाराजा मकरध्वज थे। इन राज दम्पत्ति से उत्पन्न एक ''उत्तम'' नामक पुत्र था। उत्तमकुमार की शिक्षा - दीक्षा का महाराजा मकरध्वज ने यथेष्ट प्रबन्ध किया था। शिक्षण के लिए, सदाचारी और विद्वान् अध्यापक नियुक्त किये थे। फल स्वरूप राजकुमार परीक्षा में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए। बस, इसी आनन्द में निमग्न महाराणी लक्ष्मीवती अपने महल में बैठी हुई थी और वहीं महाराजा मकरध्वज भी आ पहुँचे थे। दोनों ने उत्तमकुमार के परीक्षा में प्रथम उत्तीर्ण होने का आनन्द प्रदर्शित करते हुए कुछ समय तक बातचीत की। पश्चात् समय सूचक द्वारा, पूजा काल की सूचना पाकर दोनों गृहचैत्य में आये।

प्राचीन काल में राजा लोग प्रत्येक कार्य के समय की सूचना देने के लिए वैसे ही मनुष्य रखते थे। राजकाज में लगे हुए राजाओं को ये सेवक गण समय और कार्य की सूचना देते; जिससे वे उस कार्य में बिना किसी विलम्ब के लग जाते थे। प्रतिक्रमण, स्नान, पूजन, सामायिक, भोजन, प्रजाकार्य और शयन वगैरह, सभी आवश्यकीय कार्यों की सूचना उन्हें सेवकों द्वारा मिलती थीं। वाराणसी -

पति मकरध्वज ने भी ऐसे ही समय - सूचकों की नियुक्ति कर रखी थी। समय की सूचना पाते ही दोनों राजा - रानी पूजा करने के लिए जिनालय में चले गये थे।

दूसरा परिच्छेद

वाराणसी नगरी

दक्षिण - भरतखंड की कई महानगरियों में से वाराणसी मुख्य मानी जाती थी। उसकी रचना अनुपम थी। प्रतिभाशाली कवि लोगों ने इसे अलकापुरी की पदवी दे रखी थी। इसके एक ओर पवित्र - पतितपावनी गंगा नदी बहती थी। भारतीय - आर्यलोग इसे पवित्र तीर्थ मानकर अत्यन्त श्रद्धा - भक्ति से यहाँ आते थे। पवित्र पर्वदिनों में इस नगरी की शोभा कुछ और ही हो जाया करती थी। इस नगरी के चारों ओर गगन - चुम्बी सुदृढ़, विशाल एक दुर्ग था। बीच में कैलास - शिखर के समान ऊँचे - ऊँचे सात मंजिले मकान श्रेणीबद्ध दिखाई पड़ते थे। आस - पास के जिनालय और शिवालय अपूर्व शोभा वृद्धि कर रहे थे। चारों वर्ण के लोग महाराजा मकरध्वज की नीतिमय शीतल छत्रछाया के नीचे सुख वैभव का आनन्द लूट रहे थे। कुबेर के समान अनेक धनाढ्य सेठ - साहुकार इस नगरी में निवास करते थे। यहाँ आर्हत - प्रजा जैनों की संख्या अधिक थी। नगरी में सब तरह से एक्य - भाव था। नीति - धर्म और सत्य का पालन प्रत्येक मनुष्य करता था। जीवदया, ज्ञान प्राप्ति और निराश्रितों को आश्रय देने वाली अनेक बड़ी - बड़ी संस्थाएँ राजा और प्रजा की ओर से चलती थीं। प्रत्येक मनुष्य दीन दुखियों का दुःख बँटाने में बड़ी उत्सुकता से भाग लेता था। कलह, पर - निन्दा और पर - द्रोह का तो वहाँ नामोनिशान तक नहीं था।

महाराजा मकरध्वज के न्याय-शासन से राज्य के सब लोग संतुष्ट थे। आबाल-वृद्ध, सभी लोग महाराजा को हृदय से चाहते थे - उन्हें अपना आराध्यदेव समझते थे। महाराज भी अपनी प्रजा को पुत्रवत् मानते और उनके मनोरंजन में

अपना जीवन धन्य समझते थे। जो कोई महाराजा की शरण में आता उसे अभय प्रदान कर रक्षा करते थे। इन गुणों से महाराजा मकरध्वज की कीर्ति-ध्वजा चारों दिशाओं में फहराने लगी।

"जो प्रजा के मन को प्रसन्न रखता है वही राजा कहलाने का सच्चा अधिकारी है।" इस बात को महाराजा मकरध्वज अच्छी तरह समझते थे। इसी कारण राज्य की आबादी दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही जाती थी। राज्य कोष में भगवती लक्ष्मी आनन्दमग्ना हो, निरन्तर नृत्य करती रहती थी। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल चतुरङ्गिणी सेना राज्य रक्षा के लिए अत्यधिक थीं।

ऐसे समृद्धशाली राज्य में वाराणसी की सब-प्रजा अत्यन्त सुखी थी। व्यापार और उद्योग वहाँ दिन-प्रति दिन बढ़ते जाते थे। गंगा की तरंगो की भांति यहाँ की प्रजा में व्यापार और उद्योग हिलोरें लेते दिखाई पड़ते थे। लक्ष्मी की कृपा से, चोरी, बदमाशी, ठगी और धोके बाजी आदि दुर्गुण प्रजा में उत्पन्न नहीं हो सके। प्रत्येक मनुष्य में धार्मिकता सत्य, स्नेह और भक्ति सदैव जागरित थी। ऐसी अनुपम राजधानी में महाराजा मकरध्वज अपनी रानी सहित धर्म तथा नीति पूर्वक राज्य सुख का उपभोग करते थे। महाराजा ने धार्मिक और सांसारिक शिक्षारूपी कल्पलता को पल्लवित और कुसुमित करने के लिए विविध पाठशालाएँ तथा कलाभवनों की स्थापना की थी। इनसे वाराणसी की समस्त प्रजा भली प्रकार लाभ उठाती थी। प्रजा में विद्वान्, कवि, और चतुर कलाकारों की संख्या अधिक थी। महाराजा के विद्याप्रेम तथा गुण ग्राहकता के कारण वाराणसी समस्त भारत का विद्याकेन्द्र बन रहा था। यहाँ के विद्वान् भूतल के सब भागों में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। उन दिनों भारतीय-विद्याएँ और कलाएँ वाराणसी के पवित्र-क्षेत्र में शरीर नृत्य करती मालूम पड़ती थी। महाराजा मकरध्वज की राज नगरी में, विद्वत्ता, सत्य, नैपुण्य, कवित्व और धार्मिकता प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते थे। प्रत्येक कुटुम्ब में विद्वान्, कवि, सत्यनिष्ठ और धार्मिक व्यक्ति पाये जाते थे।

ऐसी उत्तम राजधानी में महाराजा मकरध्वज अपना जन्म सार्थक करते थे। ये आर्हत धर्म के अनुयायी तथा नीति के प्रचारक थे। सत्य पर अटल रहने वाले, आश्रय हीनों के आश्रय थे। दुखियों के दुःख निवारक एवम् प्रजा के सच्चे सुधारक थे। गुरुजनों के भक्त और जिन-सेवा में अनुरक्त थे। प्रत्येक पवित्र कार्य के सम्पादन में सशक्त किन्तु विषयों में अनासक्त थे।

महारानी लक्ष्मीवती भी महाराजा की भाँति सद्‌गुणों से सम्पन्न और पुण्य संचय करने वाली एक उत्तम श्राविका थी। उसने अपने राज्य के स्त्री-समाज के सुधार में अपना जीवन लगा दिया था। धार्मिक तथा संसारिक शिक्षा से उसे अत्यन्त प्रेम था, इसलिए स्त्री समाज को इस प्रकार का शिक्षण देने का अच्छा प्रबन्ध कर रखा था। श्राविका धर्म का रहस्य क्या है? श्राविका का इस जगत में क्या कर्तव्य है? और श्राविका को क्या - क्या काम करने चाहिए? इत्यादि विषयों पर महाराणी लक्ष्मीवती ने अच्छा मनन और पूर्ण अभ्यास किया था। उसकी मनोवृत्ति में आर्हत-धर्म के पवित्र संस्कारों का अच्छी तरह समावेश था। वह स्त्री-समाज में सब प्रकार के ज्ञान तथा कला कौशल को फैलाना चाहती थी, परन्तु "धर्म कला" के लिए उसके हृदय में सर्वोच्च स्थान था। धर्म-कला के बिना अन्य सब कलाएँ व्यर्थ है-ऐसा उसके हृदय में दृढ़ निश्चय था। वह प्रायः कहा करती कि :-

कला बहतर जो पढ़े, पंडित नाम धराय।
धर्म कला आवे न यदि, तो वह मूरख राय॥
अन्य कलाओं में कहीं, धर्म कला सरदार।
धर्म कला बिन मनुष्य का, समझो पशु अवतार॥

तीसरा परिच्छेद

कर्म परीक्षा

एक दिन विद्वान् और बुद्धि विचक्षण उत्तमकुमार अपने युवक मित्रों के साथ गंगा नदी के किनारे टहलने निकला। उसने सादी पोशाक पहिनी थी। एक हाथ में फूलों का गुलदस्ता था। कमर में स्वर्ण तथा रत्नजड़ित कमर-पट्टा बँधा हुआ था, जिसमें एक तीक्ष्ण खड्गका म्यान कनक-मुक्तामय होने के कारण जगमगा रहा था।

मस्तक पर सिरपेच का प्रकाश शोभा वृद्धि कर रहा था। दोनों भौंहों के बीच में तिलक सूक्ष्म तारे की भाँति प्रकाशित था। राजकुमार अपने विद्वान मित्रों के साथ विद्या-कला विषयक चर्चा करते जा रहे थे और तत्सम्बन्धी शंका समाधानों का भी क्रम जारी था।

एक विद्वान् मित्र ने राजकुमार से प्रश्न किया "प्रिय उत्तमकुमार ! यह बताओ कि, धर्म और कर्तव्य में क्या भेद है ?" राजकुमार ने उत्तर दिया -

"मित्र ! धर्म और कर्तव्य एक ही हैं। ये परस्पर सहचारी हैं। जो मनुष्य अपने कर्तव्य से विमुख होता है, वह धर्म से भी विमुख है। धर्म का हेतु कर्तव्य में ही चरितार्थ होता है। जिस तरह कर्तव्य हीन मनुष्य धर्म साधन नहीं कर सकता उसी तरह धर्म-विमुख व्यक्ति कर्तव्य भी पालन नहीं कर सकता। जो धर्म परायण होता है वही कर्तव्य परायण है, और जो कर्तव्य परायण है वही धर्मपरायण है। ये दोनों एक ही हैं - इनमें कुछ, भी भेद नहीं है ?"

बीच में ही एक चतुर युवक ने बात काटकर कहा - "राजकुमार ! आज तक मेरा तो यही खयाल था कि धर्म और कर्तव्य दोनों अलग-अलग वस्तु हैं, क्योंकि कर्तव्य का सम्बन्ध इसलोक से और धर्म का परलोक से है। परन्तु आपके कहने से तो मेरा खयाल झूँठा सिद्ध होता है। अब मुझे आज यह निश्चय हो गया कि कर्तव्य ही धर्म और धर्म ही कर्तव्य है। दोनों में कुछ, भी भेद

नहीं है।" (यह व्यवहार धर्म की बात है)

इस प्रकार राजकुमार और उसके मित्रों में बातचीत हो ही रही थी कि गंगा के दूसरे किनारे मधुरस्वर में किसी ने गाया :-

"पितु-धन बचपन में विपुल, खरचे खेले खाय ।
तरुण भये पै खाय तो, जन्म अकारथ जाय ॥
सोलह वर्ष बिताय कर, करे न जो उद्योग ।
पितु-धन की आशा करे, वह निन्दा के जोग ॥
सिंह और उत्तम पुरुष, करै न पर की आस ।
कर पुरुषारथ खाय जो, करके सुजस प्रकास ॥
जिसने बचपन में कभी, किया न कीर्त्ति-प्रकाश ।
उससे तो पशु ही भला, चरै बेचारा घास ॥

इस संगीत सुधा का उत्तमकुमार ने बड़े आनन्द से पान किया । संगीत की प्रति-ध्वनी गंगा के दोनों किनारों पर गूंजकर मानों उसे दोहरा चुकी थी। गान समाप्त होते ही राजकुमार विचार-सागर में गोते खाने लगे । काव्य का आशय उनके मनोविचार से मिल गया । हृदय पर गहरी छाप बैठ गयी । मन ही - मन विचार किया :-

"धन्य; इस काव्य का आशय कितना उत्तम है । सोलह वर्ष की उम्र होने के बाद पिता के भरोसे जीवन निर्वाह करना अधम-जीवन है । पिता की राज्य-लक्ष्मी का उपभोग पुत्र करे इसमें विशेषता ही क्या है ? यह तो उच्छिष्ट भोजन के समान है । आत्म बल या आत्मोद्योग किये बिना पराधीन होकर अपनी जीवन-नौका चलाना, अत्यन्त निन्दनीय कार्य है । ज्ञान तथा कलाओं का जानकार, आत्म-बल तथा पुरुषार्थ को बढ़ाने योग्य और जवान अवस्था पाकर भी पिता की राज्य-लक्ष्मी का उपभोग करता रहूँ, यह अत्यन्त अनुचित बात है । अब मुझे अपने कर्म की परीक्षा करनी चाहिए । अगाधकर्म सागर में पड़े हुए प्राणियों को अपने कर्म-भाग्य का बल जान लेना चाहिए । भाग्य-कर्म की परीक्षा किये

बिना, आलसी बनकर पड़े हुए प्राणियों की दशा नहीं फिरती यदि मैं आलसी बनकर पिता के राज्य ऐश्वर्य के सहारे पड़ा रहूँ तो फिर मेरी विद्या और कला का उपयोग ही क्या ? उपकारी पिता अपने पुत्र को ज्ञानी किसलिए बनाता है ? कलाविद् क्यों बनाता है ? सिर्फ उसके पुरुषार्थ द्वारा उपयोग करने के लिए । खुद के पुरुषार्थ से अधिक, पुरुषार्थी पुत्र को प्राप्त कर पिता के हृदय को परम-सन्तोष होता हैं। इसी लिए नीतिशास्त्र ने भी कहा है :-

"सर्वत्रजयनन्विच्छेत्पुत्राच्छिष्यात्पराभवम् ।"

"सब जगह जय की इच्छा रखनी चाहिए; किन्तु पुत्र और शिष्य से तो हार की इच्छा ही रखना उचित है ।" लव-कुश से हारे हुए राम-लक्ष्मण अत्यंत आनंदित हुए थे ।

इस प्रकार विचार-धारा में बहता हुआ उत्तम-कुमार मित्रों सहित नगर में आया । अनन्तर वह अपने मित्रों से अलग होकर राज महल में पहुँचा; परन्तु वही विचार माला उसके हृदय पर चल रही थी । अन्त में उसने यही मार्ग निश्चय किया कि - "मुझे अपनी कर्म-परीक्षा के लिए विदेश भ्रमण करना चाहिए । बिना विदेश गये भाग्य की परीक्षा नहीं हो सकेगी । अपने ज्ञान और कला की करामात दिखाने के लिए अपनी जन्मभूमि की अपेक्षा विदेश अच्छा होता है ।

सिर फूल वह चढ़ा, जो चमन से निकला ।
इज्जत उसे मिली, जो वतन से निकला ॥

परन्तु, यदि किसी भाँति मेरे इस विचार को पिताजी जान लेंगे तो वे मुझे कदापि जाने न देंगे । इसलिए खडग को अपना साथी बनाकर, यहाँ से चुपचाप निकल चलना चाहिए-यही उत्तम उपाय है।"

ऐसा निश्चय कर राजपुत्र उसी रात को वाराणसी नगरी छोड़कर चल दिया।

पाठकों ! इस विषय पर थोड़ा विचार करके उसमें से कुछ शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए । प्रत्येक विद्वान, कला विशारद युवक को अपने कर्म की परीक्षा

अवश्य करनी चाहिए। पुरुष की शक्ति दिव्य है। उस शक्ति का उपयोग किये बिना, संतोषी बनकर बैठे रहने वाले, और जन्म भूमि तथा जन्मगृह के मोह में पड़े रहने वाले कायर पुरुष अपने जीवन की उन्नति कदापि नहीं कर सकते। ज्ञान और कला का बल होते हुए भी, जो आत्मोन्नति का कार्य करने में पिछड़े हुए रहते हैं, वे आत्म वंचना करते हैं। ऐसे आत्मवंचक मनुष्यों के ही कारण इस आर्य-भूमि की यह दुर्दशा हुई है। अपने ज्ञान तथा बल को, स्वार्थ साधन में व्यय करने वाले कायर पुरुषों का जन्म इस पृथ्वी पर भार रूप होता है। ऐसे लोग देश के कट्टर शत्रु गिने जाने चाहिए। अधम सेवा वृत्ति स्वीकार कर, अपने भाग्य को बेच देने वाले, तथा पराये भाग्य पर जीवन बिताने वाले लोगों का जन्म बकरी के गले के स्तनों की भाँति व्यर्थ है। इसलिए प्रत्येक युवक को ज्ञान-बल सम्पादन करके कर्म-परीक्षा के उद्देश्य से विदेश भ्रमण करना चाहिए और अपने पुरुषार्थ से यथा संभव मानव जाति का उपकार करना चाहिए। इसी में जीवन की सार्थकता है। धर्मवीर उत्तमकुमार ने भी अपने जीवन को सार्थक करने के लिए इसी प्रशस्त मार्ग का अनुसरण किया।

चौथा परिच्छेद

अश्व-परीक्षा

मध्याह्न का समय था। शिशिरऋतु होने के कारण अंशुमाली-सूर्य की किरणों में तीव्रता थी ही नहीं। वन-स्थली अपनी जीर्णशीर्ण पोशाक परित्याग कर, नयी पहिनने के लिए तैयारी कर रही थी। प्रत्येक वृक्ष से पतझड़ हो रहा था - ऐसा मालूम होता था मानो वृक्षों के नीचे कीसी ने पीले रंग का गलीचा बिछा दिया हो। शिशिरऋतु की शोभा जैसी चाहिए वैसी अच्छी नहीं होती, परन्तु हाँ वन लक्ष्मी नवीन शोभा प्राप्त करने के लिए विशेष उत्सुक रहती है। इसी वन में एक अश्वारोही घूमने-फिरने के लिए आया हुआ है। उसके पीछे घुड़ सवारों की

एक छोटी सी टुकड़ी भी है। घोड़ो की हिनहिनाहट से वन-भूमि गूँज उठी। थोड़ी दूर आगे जाने पर टुकड़ी के नायक ने अपने घोड़े को दौड़ाना चाहा, परन्तु उस घोड़े ने अपनी मन्द गति नहीं छोड़ी। चतुर सवार ने उसे दौड़ाने कि लिए बहुतेरे प्रयत्न किये किन्तु सब निष्फल। घोड़े ने अपनी चाल तेज नहीं की। अन्त में उसने अपना घोड़ा वहीं रोक दिया। पीछे से आने वाले घुड़सवार भी रुक गये। जब तक सैनिक सेना नायक के निकट आया तब उसने पूछा ---

"मंत्रिवर्य ! आज यह क्या हुआ, कुछ समझ ही में नहीं आता ! यह घोड़ा बिलकुल नया बछेरा है, और बड़ा ही वेगवान भी है, परन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी यह नहीं चलता ! इसका क्या कारण है ?"

मंत्री ने उत्तर दिया - "महाराज ! बिना अश्वविद्या के जाने इस विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यदि कोई अश्व-विद्या का ज्ञाता हो तो कुछ बता सकता है।"

मंत्री के इन वचनों को सुनकर मुख्य-नायक विचार सागर में निमग्न हो गया। इतने ही में एक सुन्दर पुरुष कुछ दूरी पर सामने से उसे आता दिखाई दिया। उस पुरुष ने इन घुड़सवारों को खड़े देखा तो सहज ही वहाँ आकर खड़ा हो गया। जब उसकी दृष्टी मुख्य सेना-नायक पर पड़ी तो उसने उसे सविनय प्रणाम किया।

पाठक ! आपके हृदय में, इस अजनबी प्रसङ्ग को जानने की उत्कंठा हुई होगी। इसका स्पष्टी करण हो जाना ठीक है। जो यह मुख्य सेना-नायक अश्वारोही पुरुष है, वह मेदपाट-मेवाड़ का महाराजा महीसेन है। इसकी राजधानी का नाम चित्रकूट नगर है। इसके अधिकार में बहुत से देश हैं। यह महीसेन राजा बानवेलाख मालवा का स्वामी कहा जाता है। इसके कोई भी सन्तान नहीं है। इस राजा को अश्व क्रीड़ा का बहुत शौक है। यह आज अपने मंत्री तथा दूसरे सरदारों सहित घोड़ो पर चढ़कर वन में घूमने निकला है। दैव योग से यहाँ पर उत्तमकुमार से इसकी भेट हो गयी। उत्तमकुमार वाराणसी नगरी छोड़कर यहाँ कैसे आया ? यह बात "कर्म परीक्षा प्रकरण" में अच्छी तरह बता दी गयी है, - पाठक भूले न होंगे। महीसेन ने उत्तम कुमार से पूछा-

"भद्र ! आप मुझे कुछ विलक्षण पुरुष मालूम होते हो ! क्या आप बता सकते हैं

कि मेरे इस घोड़े को क्या हुआ ? यह चलता क्यों नहीं ? अचानक इसकी गति मन्द क्यो हो गयी ?" उत्तमकुमार ने उस घोड़े को अच्छी तरह देख भाल कर कहा - "श्रीमान् ! मुझे मालूम होता है कि, इस घोड़े ने भैंस का दूध पीया है, इसी कारण इसकी चाल मन्द हो गयी है। भैंस का दूध वात उत्पन्न करने वाला है; उसके पीने से घोड़े की तेजी नष्ट हो जाती है।"

उत्तम कुमार की बात सुनकर राजा ने कहा "महाशय ! आपने कैसे जाना ? मैने अश्व-विद्या पढ़ी है।" उत्तम कुमार ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया।

यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा - "यह बिलकुल सत्य है। यह घोड़ा जब पैदा हुआ था, तब कुछ दिन बाद इसकी माता के मर जाने पर इसे भैंस का दूध पिलाकर ही पाला-पोसा गया था। मैं आपकी कला और गुणों को देखकर बड़ा ही संतुष्ट हूँ, क्या आप मुझे यह बतलाने की कृपा करेंगे कि, आप कौन हैं, और किसलिए वन में घूम रहेहै ?"

राजकुमार ने कहा - "महानुभाव ! में अपना विशेष वृत्तांत फिर कभी समय पाकर निवेदन करूँगा। इस समय तो केवल इतना ही बताना उचित समझता हूँ कि मैं एक राजकुमार हूँ और देशाटन की इच्छा से घूम रहा हूँ।

"राजकुमार" शब्द सुनते ही मेवाड़ पति को अत्यन्त आनन्द हुआ और अपने मन में सोचने लगा कि - "यह राजपुत्र वास्तव में गुणी है, और अपने गुणों के कारण राज्य का अधिकारी होने योग्य है। मुझे कोई सन्तान नहीं है अच्छा हो यदि इसे मैं अपने पुत्र रूप में मानकर राज्य भार सौंप दूँ। ऐसा होने पर मेरी मनोभिलाषा पूर्ण होगी, और मैं आत्म-साधन भी कर सकूँगा।" ऐसा विचारकर मेवाड़-पति ने राजकुमार से कहा "वत्स ! आपकी कला और गुणों को देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। अब मेरी आप से प्रार्थना है कि, यदि आप मेरी यह राज्य-लक्ष्मी ग्रहण करें तो मैं धर्म-दीक्षा लेकर आत्म-साधन के लिए गृहस्थाश्रम त्याग ने की इच्छा करता हूँ - मुझे पूर्ण आशा है कि आप मेरी प्रार्थना विफल न करेंगे।"

राजा की यह बात सुन उत्तमकुमार थोड़ी देर तक कुछ सोचते रहे - बाद में कहा

– "महाराज ! आपने मेरे प्रति इतनी कृपा की, इसके लिए मैं आपका चिर आभारी रहूँगा। मुझ जैसे अज्ञात कुल पुरुष को आप मेदपाट देश का सुविशाल राज्य देने के लिए तैयार हो गये, इसको मैं अपना गौरव समझता हूँ, किन्तु मुझे आशा है कि आप मुझे क्षमा करते हुए मेरी विनंती पर ध्यान देंगे। मैं वाराणसी नगरी का राजकुमार हूँ; भाग्य परीक्षा के लिए तथा विविधकौतुक देखने की इच्छा से मैं देशाटन के लिए घूम रहा हूँ। आर्यभूमि की महत्ता तथा विद्वानों की बुद्धि निपुणता देखने की मुझे अत्यन्त उत्कंठा है। इसलिए मुझे इस समय तो आप जाने की आज्ञा दें। मेरी उत्कंठा पूर्ण होने पर मैं आपकी राजधानी में फिर जल्दी ही लौट आऊँगा। मेरे वचन पर विश्वास करके मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए।

उत्तमकुमार की यह प्रार्थना सुनकर मेवाड़-पति प्रसन्न हो, पुनः आने का वचन ले, उसे जाने की आज्ञा दे दी और हृदय से लगाकर विदा किया। राजा महीसेन की आज्ञा लेकर, विनय पूर्वक प्रणाम कर उत्तमकुमार आगे बढ़ा और मेवाड़-पति अपने सरदारों के साथ अपनी राजधानी चित्रकूट को लौट गया।

पाँचवाँ परिच्छेद

कृतघ्नी को धिक्कार

समुद्र तट पर एक अच्छा शहर बसा हुआ है। झुण्ड-के-झुण्ड लोग बंदरगाह पर आते और जाते हैं। मदमत्त मजदूर काम करते जाते हैं और साथ ही श्रवण सुखद मधुर गीत भी गा रहे हैं। माल से भरी हुई बैल गाड़ियों की कतार शहर की तरफ से आ रही है। जल मार्ग के यात्री तैयार होकर समुद्र के किनारे खड़े हैं। शहर के एक तरफ नर्मदा नदी बड़े वेग से बह रही है। यह महानदी जैन सती नर्मदासुन्दरी के इतिहास की याद दिलाती है। आर्य प्रजा तीर्थ रूप में इसका बड़ा मान करती है।

इस समय राजपुत्र उत्तमकुमार भी देश-देशान्तर घूमता-फिरता वहाँ आ पहूँचा। मार्ग में उसे एक नागरिक मिला जिससे उसने पूछा – "भाई ! यह कौन

सा नगर है ? और यहाँ क्या-क्या देखने लायक वस्तुएँ है ?'' उस नागरिक ने जवाब दिया - यह भृगु कच्छ (भरुच) नगर है । गुजरात देश का यह एक अत्यन्त प्रसिद्ध नगर है । गुजरात की व्यापारश्री यहीं निवास करती है, और यह स्थान आर्य-भूमि में एक बड़ा तीर्थ माना जाता है । इस नगर में मुनिसुव्रतस्वामी की एक मनोहर मूर्ति है । असंख्य यात्री प्रभु की सुन्दर प्रतिमा के दर्शनार्थ यहाँ नित्य आते हैं ।''

उस नागरिक के ऐसे वचन सुनकर उत्तमकुमार शहर में गया और वहाँ की रमणीयता देखकर उसके चित्त में अत्यंत प्रसन्नता हुई । प्रत्येक सड़को और गलियों में वस्त्राभूषणों से सुसज्जित स्त्रियाँ घूम रही थीं । छोटे-छोटे बालक जहाँ-तहाँ इकट्ठे होकर विविधभाँति के गवाक्षों से तथा खिड़कियों के पास में खड़ी हुई रमणियों के निकले हुए मुख आकाश में सैकड़ों चन्द्रमाओं के उदय होने का धोखा दे रहे थे । इस तरह के आनन्ददायक दृश्यों को देखता हुआ उत्तमकुमार शहर के मध्य-भाग में जा पहुँचा । आगे बढ़ने पर उसे एक अत्यन्त सुन्दर विमानाकार चैत्य दिखाई पड़ा । उसे देखते ही धर्मनिष्ठ उत्तम कुमार बड़ा ही प्रसन्न हुआ । उसने चैत्य में प्रवेश किया जहाँ उसने मुनिसुव्रतस्वामी की प्रतिमा देखी । निसीहि का उच्चारण करते हुए वह आगे बढ़ा और उसने प्रभु की प्रतिमा को वन्दना की । वन्दना करते समय उसके हृदय में भावोल्लास उत्पन्न हुआ और वह कहने लगा :-

''प्रभु प्रतिमा मन मोहिनी, दुखभंजन सुखरूप ।
जन मन आनन्दकारिणी, राजत रूप अनूप ॥
वांच्छित फल दाता प्रभु, भव दुःख मेटन हार ।
मूरति अमृत स्यंदिनी, करे शीघ्र उद्धार ॥
तूं जगबन्धू जगतपति, तूं जगदीश दयालु ।
तूं माता तूं ही पिता, करुणावंत कृपालु ॥

इस प्रकार प्रार्थना करने के बाद, भावना से पूर्ण राजकुमार घूमता-

फिरता समुद्र के किनारे आया । उस समय हजारों जहाज और नौकाएँ माल से लदी हुई जाने के लिए तैयार थी । सिर्फ नाविकों द्वारा दी हुई अनुकूल हवा की सूचना की प्रतिक्षा में व्यापारी लोग द्वीपान्तरों में जाने की तैयारियाँ कर रहे थे । वह राजकुमार एक बड़े जहाज के पास आकर खड़ा हो गया । उस जहाज के पास ही एक तेजस्वी पुरुष खड़ा-खड़ा माल और मनुष्यों की संख्या गिन रहा था । राज-तेज से प्रदीप्त उत्तमकुमार को देखकर उस प्रौढ़ पुरुष ने पूछा - "भद्र ! आप कौन हैं; और यहाँ क्यों आये हो ? यदि आपकी इच्छा हो तो मेरे साथ जहाज में चलिए ।" राजकुमार ने नम्रता पूर्वक कहा - "मैं एक मुसाफिर राजकुमार हूँ । विदेशों में भ्रमण करने के लिए ही राज्य छोड़कर निकला हूँ ।" यह सुनकर उस प्रौढ़ पुरुष ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा - "यदि आपकी इच्छा हो तो मेरे साथ चल सकते हैं । आप जैसे भाग्यशाली पुरुष के साथ मुझे इस यात्रा में खूब लाभ होगा ।" राजकुमार ने उत्सुकता से पुछा - "आप कौन हैं ? और कहाँ जायेंगे ?" प्रौढ़ पुरुष बोला - "मैं कुबेरदत्त नामक एक समुद्री व्यापारी हूँ । इसी शहर में रहता हूँ । मेरे अधिकार में बहुत से जहाज हैं । मेरा व्यापार लगभग सभी द्वीप द्वीपान्तरों में होता है । जिस ओर पवन-अनुकूल होता है उसी दिशा में मैं अपने जहाजों को चलाता हूँ ।" कुबेरदत्त के इन वचनों को सुनकर उत्तमकुमार समुद्र-यात्रा के लिए तैयार हो गया, और एक जहाज पर जा बैठा । ठीक समय पर जहाज के लंगर उठे और मल्लाहों ने जहाज चला दिये ।

हवा की अनुकूलता पाकर जहाज समुद्र तल पर चलने लगे । समुद्र अपनी तरंगें उछाल रहा था । जलजीव जल में आनन्द पूर्वक क्रीड़ा कर रहे थे । जहाज के ऊपरी हिस्से में बैठकर उत्तमकुमार समुद्र की खिलवाड़ देखने लगा । लहरों के साथ जल-जंतुओं की कूद-फाँद, और दौड़ाई देखकर वह मन में अनेक प्रकार के विचार करने लगा । ऊपर आकाश और नीचे जल-इन दोनों तत्त्वों को देखकर क्षण भर के लिए ऐसी भावना मन में उत्पन्न हो जाती थी कि मानों दूसरे तत्त्व इस संसार में है ही नहीं ।

यह जहाजों का बेड़ा समुद्र के वक्षस्थल पर निर्भय घूमता फिरता चला जा रहा था कि - मल्लहों ने जोर से पुकारकर कहा :- "शून्य द्वीप आ गया है। यहाँ पर मीठा पानी मिल सकेगा।" यह सुनते ही यात्री लोग द्वीप का मार्ग देखने लगे। मल्लाहों ने लंगर डाला। इस शून्य द्वीप में मीठा पानी मिलता था। इसलिए लोग अपने जहाजों को ठहरा कर यहाँ से पीने योग्य मीठा पानी भर लिया करते थे। अत: इन लोगों ने भी मीठा पानी अपने-अपने जहाज में भर लिया। जहाज चलने ही को थे कि इसी बीच भयङ्कर गर्ज्जना हुई। गर्ज्जना को सुनते ही लोग काँप उठे। मल्लाह लोग भी किंकर्त्तव्य विमूढ़, बनकर, भयभीत हुए। इस तरह सबको व्याकुल और भयभीत देखकर राजपुत्र उत्तम ने कुबेरदत्त से पूछा - "महाशय ! इस शून्य द्वीप में ऐसी गर्ज्जना करने वाला यह कौन है ? यह गर्ज्जना कहाँ से हुई ?" कुबेरदत्त ने डरते हुए कहा - "राजकुमार ! इस शून्य द्वीप में भ्रमरकेतु नामक एक राक्षस रहता है। यह अत्यन्त निर्दय और क्रुर स्वभाववाला है। जब वह क्रुद्ध होकर आता है, तब लोगों को बहुत त्रास देता है और मार कर खा भी जाता है। भाई ! अब आज हमारे जीवन का अंत समझना चाहिए। उसके इस भयानक गर्ज्जन को सुनते ही अनुमान होता है कि वह बहुत गुस्से में है। वह निर्दयी अवश्यमेव हमारी हानि करेगा। राजपुत्र ! आप क्षत्रिय हैं, अत एव हमारी रक्षा करो। जो प्राणनाश के समय रक्षा करता है, वही सच्चा क्षत्रिय है। आपके होते हुए हमलोग बे मौत मारे जावें, वह अनुचित है। भरतक्षेत्र के अनेक क्षत्रिय वीरों ने अपनें प्राणों की आहुतियाँ दे देकर लोगों की रक्षा की हैं। चारों वर्गो में यदि कोई प्राण देकर दूसरे की रक्षा करने वाला है तो वह क्षत्रिय बालक है। आप हमें इस संकट से बचाइए हम आपकी शरण में हैं।"

इस प्रकार कुबेरदत्त ने अत्यन्त नम्रता पूर्ण उत्तमकुमार से प्रार्थना की। इतने ही में वह भयङ्कर क्रूर कर्मा राक्षस भी पास आ पहुँचा, और लोगों को कष्ट देने लगा। किसी का हाथ, किसी का पैर और किसी के बाल पकड़-पकड़ कर घसीटने लगा। उसके ऐसे नीच कृत्यों को देखकर रणवीर उत्तमकुमार ने म्यान से तलवार निकाल ली और सिंह के बच्चे की तरह उसके आगे कूद पड़ा और

बोला - "रे पापी ! ठहर, मैं तुझे अभी देखता हूँ ।" राक्षस भी राजकुमार पर लपटा और राजकुमार उस पर लपटा । समुद्र के तट पर दोनों का भीषण युद्ध होने लगा । वीर उत्तमकुमार ने अपने बाहुबल से भ्रमरकेतु को थका दिया - वह हाँफने लगा और अन्त में वहाँ से प्राण लेकर भाग गया ।

राक्षस के भाग जाने पर उत्तमकुमार शान्त होकर समुद्र के किनारे कुछ देर तक खड़ा रहा । जब उसने समुद्र की ओर देखा तो उसे कुबेरदत्त तथा उसके जहाज दिखाई नहीं पड़े । जहाँ तक उसकी दृष्टि पहुँच सकती थी वहाँ तक उसने नजर दौड़ा कर जल मार्ग को देखा; परन्तु उसे जहाज आदि कहीं भी कोई नहीं दिखा । राजकुमार मन-ही-मन सोचने लगा - "यह जगत स्वार्थी है । जिसका मैंने उपकार किया उसी कुबेरदत्त ने मुझे युद्ध में उस राक्षस से भिड़ाकर अपने जहाजों को आगे बढ़ा दिया ! ओफ्, कैसा नीच स्वार्थ है ? जिन्हें राक्षस के हाथों से छुड़ा कर जीवन-दान दिया वे लोग भी तो मुझे यहाँ अकेला छोड़कर भाग गये ! संसार में ऐसे कृतघ्नियों को धिक्कार है । ऐसे नीच कृतघ्न पुरुषों ही के कारण पृथ्वी पर पाप का भार बढ़ रहा है और इन्हीं पापियों के कारण जगत दुःखागार बन रहा है । जो किये हुए उपकारों को नहीं समझते, ऐसे कृतघ्नी लोगों से ही यह संसार असार और दुःख का हेतु समझा जाने लगा है । जगत में मनुष्य योनि सब से श्रेष्ठ मानी जाती है, इतने पर भी उसमें जो दूषण दिखाई पड़ते हैं वे ऐसे स्वार्थी और कृतघ्नी लोगों के कारण ही है । ऐसे कृतघ्नी मनुष्यों को बार-बार धिक्कार है ।"

यह सोचकर राजकुमार ने तत्त्व दृष्टि से विचारा कि - "जो कुछ भी हुआ सो ठीक है । उन स्वार्थी लोगों ने अपने स्वभावानुसार कर दिखाया; परन्तु मुझे ऐसे नीच पामरों के दोष देखने की जरूरत क्या है ? मेरे कर्म का भी तो दोष होगा । ऐसे निर्जन समुद्र तट पर, दुःखभोग करने में मेरे किसी पूर्व संचित कर्म का फल अवश्य ही होना चाहिए । यही कारण है कि कुबेरदत्त के हृदय में कृतघ्नता-दोष उत्पन्न हुआ । मैं उसे क्यों दोष दूँ ? यह सब मेरे ही कर्मों का तो फल है ! ऐसा सोचकर वह समुद्र के किनारे-किनारे चलने लगा । अब क्या करना चाहिए ?

और कहाँ जाना चाहिए ?"इसी उधेड़बुन में वह एक छायादार वृक्ष के नीचे जा पहुँचा। कुमार थोड़ी देर वहाँ बैठकर आराम करने लगा।

सूर्य का रथ अस्ताचल के उस पार निकल गया। रात्रि ने अपना अन्धकार का काला पर्दा विश्व पर डाल दिया। राजकुमार अपने पुरुषार्थ के बल पर उसी वृक्ष के नीचे निर्भयता पूर्वक सो रहा। दूसरे दिन प्रातः समय उस वृक्ष पर सफेद वस्त्र की उसने एक ध्वजा बान्धी और वहीं निवास करने लगा। आस-पास के वृक्षों पर से सुस्वादु-मधुर फल तोड़कर उनसे अपना जीवन निर्वाह करने लगा। पाठक ! इस घटना से हमें एक उपयोगी शिक्षा लेनी चाहिए - यदि अपने जीवन को निष्कलंक रखना हो और मानवजीवन सार्थक करना हो तो भूल कर भी कृतघ्नता नहीं करनी चाहिए। किसी के उपकारों का बदला कृतघ्नता के रूप में देना भयङ्कर पाप है। किसीके थोड़े से भी उपकार के बदले में उसका आभारी रहना उत्तम पुरुषों का काम है। यदि आप अपने प्रति किये उपकार का बदला न दे सको तो अपने हृदय में उसके लिए सद्विचार अवश्य रखो और ऐसे समय की प्रतीक्षा में रहो कि मौका आते ही आप उसका बदला दे सको। उपकार के बदले में अपकार नहीं करना चाहिए। कृतघ्नी नहीं होना चाहिए। कृतघ्नतारूपी महान् दोष मनुष्य जीवन को कलंकित करके अन्त में नरक में पहुँचाता है।

छठा परिच्छेद

परनारी-सहोदर

एक दिव्य-सुन्दर स्त्री श्रृंगार किये उस वन में घूमती थी। उसके स्वाभाविक सौन्दर्य की शोभा शृङ्गार के कारण और भी अधिक दर्शनीय बन गयी थी। मुख-चन्द्र का तेज उसके आस-पास प्रकाशित हो रहा था। उसके शरीर का प्रत्येक अंग सौन्दर्य के साथ ही साथ प्रकाश कर रहा था। उसके हाथ में एक फूलों की गेंद थी। उस गेंद से वह रमणी इधर उधर खेलती फिरती थी।

जब कि वह उस गेंद को उछालकर उसे देखने के लिए आकाश की ओर देखती तब उसके मुख-मण्डल के प्रकाश में आकाश आलोकित हो जाता था ।

यह रमणी घूमती फिरती वहाँ आ पहुँची, जहाँ सफेद ध्वजा वाला वृक्ष था । उस वृक्ष के नीचे, उत्तम कुमार को द्वितीय कामदेव के समान बैठा देखकर वह उस पर तत्काल मोहित हो गयी । कामबाणों से विद्ध उस दिव्यांगना ने मन-ही-मन सोचा - " अहा ! कैसा मनोहर रूप है ? शरीर मानों साँचे में ढला हुआ है ! कैसी सुन्दर आकृति है ? ऐसे निर्जन स्थान में यह तरुण कहाँ से आया ? मेरा भाग्य ही उसे यहाँ खींच लाया है ऐसा मालूम होता है । चलूँ, देखें उससे मधुर-भाषण कर उसे अपना बनाऊँ ।" यह सोचकर वह दिव्य-सुन्दरी राजकुमार के पास आयी । उसे अचानक आयी देख, राजकुमार आश्चर्य-चकित हो मन में विचारने लगा - "इस निर्जन स्थान में ऐसी सुन्दर स्त्री कहाँ से आ पहुँची ?" उसे आश्चर्य में पड़ा देखकर, उस सुन्दरी ने कटाक्ष मारते हुए कहा - "कुमार ! आपके दर्शन से मेरे मनोरथ सफल हुए हैं । मेरी सौभाग्य देवी ने ही आज प्रसन्न होकर मुझे आपसे मिलाया है । निर्भय होकर आप मुझे अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनाओ - अपने रमणीय यौवन को सफल करो । मैं इस द्वीप की अधिष्ठात्री देवी हूँ । यदि आप मुझ से अपना प्रेम सम्बन्ध कर लोगे तो आप स्वर्गीय आनन्द प्राप्त करोगे । आप एक मनुष्य हैं - मानव शरीर द्वारा दिव्य - सुख का प्राप्त होना असम्भव है । इस पर भी आपकी मनोहर मूर्ति पर मैं आसक्त हुई हूँ । आपके इस मानव शरीर को मेरे साथ दिव्य-भोग भोग ने का आज अहो भाग्य प्राप्त हुआ है । आपके रूप और गुणों पर मुग्ध होकर मैं आपके अधिन होने को तैयार हूँ । आशा है, आप इस अवसर को न जाने देंगे ।"

उस दिव्य रमणी के मुँह से ऐसे मन मोहक वचनों को सुनकर धीर-वीर उत्तमकुमार कहने लगा - "माता ! यह क्या कह रही हो ? आप जैसी पवित्र देवी के मुख से ऐसे वचन कदापि नहीं निकलने चाहिए । मैं मानव देहधारी आपका पुत्रवत् हूँ । भूतल पर विचरने वाले सभी मनुष्य आपकी सन्तान

हैं। आप एक द्वीप वासिनी अधिष्ठात्री माता हो। माता ! यदि अज्ञानवश आप अपने कर्त्तव्य से गिरती हैं, तो मैं तो अपने कर्त्तव्य अथवा नीति से कदापि विचलित नहीं होऊँगा। मैंने अपने इस क्षण-भंगुर जीवन में निश्चय किया है कि - "आमरण परस्त्री सहोदर रहूँगा --- मैंने अपने जीवन में यह महाव्रत लिया है कि इस जगत की सब स्त्रियाँ मेरी बहिनें हैं और सब वृद्धाएँ मेरी माताएँ हैं।" अपनी स्त्री के अतिरिक्त दूसरी स्त्रियों में ऐसी पवित्र बुद्धि रखना ही नर जीवन का ऊँचे-से-ऊँचा आदर्श है। परस्त्री के महापाप रूपी कीचड़ में फँसकर अपने जीवन को कलंकित करनेवाले पुरुष अधम से भी अधम हैं। माँ ! यह मेरा दृढ़ निश्चय है कि दिव्य, मानवी अथवा कैसी भी स्त्री मेरे सामने आवे, मैं अपने नियम से कदापि विचलित नहीं होऊँगा। माताजी ! सुनो --

"परनारि मेरी बहिन, पर नारी मम-मात।
भाई मैं परनारी का, साँची मानों बात॥
प्रेम करे परनारि से, भलो न कहिये कोय।
अपयश हो इस लोक में, पर-भव दुर्गति होय॥

इतना कहकर उत्तम कुमार ने उसके चरणों को स्पर्श करते हुए कहा - "माता ! मुझे पुत्र की भाँति समझकर आपकी विकार दृष्टि त्याग दीजिए। मैं आपकी शरण में हूँ। अपने पुत्र की रक्षा कीजिए।"

राजकुमार के ऐसे विचार और वचनों को सुनकर द्वीपेश्वरी ने क्रुद्ध हो कहा - "राजकुमार ! मर्यादा में रह ! ऐसी अविचार पूर्ण बातें न कर ! तुझे मेरे कहने के अनुसार करना पड़ेगा। यदि तूं नम्रता से मेरी बातें न मानेगा तो मैं कह देती हूँ कि तुझे कष्ट भोगना पड़ेगा। तूं मुझे माता या बहिन कहकर नहीं बोल सकता। तूं मुझे प्रिया कहकर बुला --- मैं तेरी प्राण प्यारी स्त्री हूँ; ऐसा सोचकर मेरी आज्ञा स्वीकार कर। अरे मन्द-बुद्धे ! तूं दूरदर्शिता से देख, तेरा अहोभाग्य है कि यह देवदारा तेरे वश में रहने को तैयार है। यदि मैं प्रसन्न हु तो तुझे राज्य लक्ष्मी का अधिपति बना दूँगी; और यदि तूं अपने लाभ को खोकर मेरा वचन नहीं मानेगा

तो फिर मेरे भयङ्कर खड्ग से तेरा सिर उतार लूँगी।"

इतना कहकर उस दिव्य देवी ने अपना भयङ्कर रूप प्रकट किया। तीक्ष्ण खड्ग हाथ में लिये, महामाया भय प्रदर्शित करते हुए कहने लगी --- "रे मानव! बोल, अब क्या कहता है? यदि तूं मेरी बात नहीं मानेगा तो मैं इसी तलवार से तेरा मस्तक धड़ से अलग कर दूँगी। देवी के ऐसे भयानक शब्द कहने पर भी वीर उत्तमकुमार अपनी दृढ़ता से जरा भी विचलित नहीं हुआ। उसने निर्भय होकर कहा -

"सुधा पान से जाय मरि, चन्द्र बने अंगार।
किन्तू मैं परनारि को, करुँ न अङ्गीकार॥
जो इच्छा हो कर वही, मार भले हो तार।
आगे पीछे एक दिन, मरना है इकवार॥"

राजकुमार के ऐसे विरोचित वचन सुनकर वह देवी प्रसन्न हो कहने लगी - "नरोत्तम! धैर्य सिन्धु। परनारी-सहोदर। तुझे कोटि-कोटि धन्यवाद है। तेरी दृढ़ता देखकर मेरे हृदय में आनन्द-सागर हिलोरें मार रहा है। तुझ जैसे वीर पुरुषों से ही आज भरतक्षेत्र की भूमि अपना सिर गौरव से ऊँचा कर सकती है। तुझ जैसे जितेन्द्रिय पुत्र को जन्म देनेवाली माता धन्यवाद के योग्य है। पुरुष पुङ्गव! इस संसार में तूं सच्चा परनारी सहोदर है। पुत्र! जा, तूं सुखी रहेगा और अपने जीवन में अत्यन्त उन्नति करेगा।" इतना कहकर उस देवी ने राजकुमार को बारह करोड़ रत्न राशि अर्पण की और स्वयम् अदृश्य हो गयी।

प्रिय पाठक! इस घटना की नीति को आप अपने मनोमंदिर में अवश्य स्थापित करना और परनारी सहोदर बनने की पवित्र भावना हृदय में धारण करना। परस्त्री के लिए अपने चित्त में मातृभावना और भगिनी भावना रखना सबसे पवित्र कार्य है। इस प्रकार के संयम गुणों से भरतक्षेत्र में अनेक चमत्कार हो चुके हैं। अग्नि को शीतल करने वाला, शीतल को गर्म करनेवाला, सिंह को बकरी बनाने वाला और बकरी को सिंह बनानेवाला, विष को अमृत बनानेवाला और अमृत को विष बनानेवाला, समृद्र में स्थल उत्पन्न करनेवाला और स्थल पर

समुद्र करनेवाला, यह इन्द्रिय निग्रह तप है। इस देश के लोग अब तक भी इस तप का यशोगान करते हैं। अनेक वीर पुरुषों ने, इस परनारी सहोदर-व्रत के द्वारा अपने जीवन को निर्वाण के पवित्र एवम् प्रशस्त मार्ग पर पहुँचाया है। ऐसे नररत्नों की सत्कीर्ति इतिहास ग्रंथो में जहाँ-तहाँ वर्णित है। जो इस महाव्रत से वंचित रहे, अथवा जो इस महाव्रत में असफल हुए, उन्हें अत्यन्त दुःखदायी घोर नरक की असह्य यातनाएँ भोगनी पड़ी हैं और साथ ही उनके चरित्र पर चिरकाल के लिए कलंक-कालिमा पुत गयी है। परस्त्री के प्रेम की आशा रखने वाले अधम पुरुषों की कैसी-कैसी दुर्गतियाँ हुई हैं। इसके सैकड़ों उदाहरण इतिहास के पृष्ठों पर अंकित हैं। ऐसे पापी पुरुष इहलोक और परलोक से पतित होकर महान् कष्ट पा चुके हैं। पाठक ! इन सब बातों पर ध्यान देते हुए अपने जीवन को इस महापाप से बचाने का प्रयत्न करे और परनारी-सहोदर होकर अपने जीवन को उन्नति के मार्ग पर ले जावे। इस कथा के चरित्र नायक "परनारी-सहोदर" है, और वह इस महाव्रत के प्रभाव से किस-किस प्रकार विजयी हुआ, यह सब आगे चलकर आपको ज्ञान हो जायगा।

सातवाँ परिच्छेद

मदालसा।

एक सुवर्ण-महल है, जिसकी रचना बड़ी ही अनुपम है। रत्न जटित स्तंभों के कारण वह और भी मनोहर हो गया है। महल का शिखर स्वर्ण मंडित होने के कारण ऐसा मालूम होता है मानो अरुणोदय हो रहा है। उस महल में कई दालान और बड़े-बड़े कमरे हैं। प्रत्येक कमरा विविधवस्तुओं से सुसज्जित है। स्वर्ण और रत्नों से मंडित पलंग, चौकी, और झूला आदि सामग्रियों से वह और भी रमणीय मालूम पड़ता है। मणिरत्न विभूषित दीवारों पर बड़े विशाल दर्पण लगे हुए हैं। उनमें दीवारों पर के चित्रित-चित्रों का प्रतिबिम्ब पड़ने से वह और भी

मनमोहक बन गया है।

इस महल के पहिले द्वार पर एक वृद्धा स्त्री बैठी है। उसकी पोशाक सादी और स्वच्छ है। उसके मुख मण्डल पर प्रौढ़ता के चिह्न स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। वह वृद्धा होने पर भी चतुर और "चालाक मालूम होती है। उसका सौन्दर्य बुढ़ापे से आच्छादित है। वह वृद्धा वहाँ बैठी बहुत सोच-विचार किया करती और अपने कर्त्तव्य का भी स्मरण करती रहती थी। वृद्धा किसी विचार में निमग्ना थी कि इतने ही में एक युवक वहाँ आ पहुँचा। वह युवक इस अद्भुत मनोहर महल को देखकर चकित हो गया। उसके हृदय में अद्भुत रस के भाव उत्पन्न हुए। जब वह खड़ा-खड़ा उस महल के सौन्दर्य को देख रहा था, उस समय उस वृद्धा स्त्री ने उसे देखा। उस सुन्दर कुमार को देखते ही वह आनन्द और आश्चर्य से उसके पास आकर पूछने लगी। "रे सुन्दर मानव मूर्त्ति ! तूं यहाँ कहाँ आ गया ? यह यमराज का द्वार है। तेरे किस शत्रु ने तुझे धोखा देकर इस प्राणनाशक स्थान में भेज दिया ? यहाँ आने वाला जीवित नहीं बच सकता।"

उस वृद्धा की बात सुनकर उस तरुण ने पूछा "क्यों माँ ! यह किसका महल है ? तुम कौन हो ? और यहाँ किसलिए बैठी हो ?"

वृद्धा ने कहा :- "तेरा गांभीर्य देखने से मालूम होता है कि तूं निर्भय सद्गुणी और सत्य परायण व्यक्ति है, इसलिए मैं तुझसे इस स्थान की सत्य-सत्य बातें कहती हूँ। सुन, यहीं पास ही में राक्षस द्वीप है, उसमें एक लङ्का नामक नगरी हैं। उसमें भ्रमरकेतु नामक एक राक्षस राज्य करता है। उसके एक पुत्री है। जिसका नाम मदालसा है। वह अत्यन्त रूपवती और समस्त कलाओं में प्रवीण है। वह सुलक्षणा है - उसके शरीर पर अनेक उत्तमोत्तम चिह्न हैं। देवकन्या के समान रूप, गुण, तथा सर्व लक्षण सम्पन्न राक्षस कन्या मदालसा अपने पिता की अत्यन्त प्यारी बेटी है। राक्षस भ्रमरकेतु उस पर अन्यन्त वात्सल्य-प्रेम रखता है। किसी समय कोई एक ज्योतिषी लङ्का नगरी में आया। उसे अच्छा भविष्यवेत्ता जानकर राक्षसपति-भ्रमरकेतु ने अपने यहाँ बुलाया और पूछा कि - "इस मेरी

पुत्री मदालसा का पति कौन होगा ?" उस भविष्य-वक्ता ने अपने ज्ञानबल से विचारकर कहा - "राजेन्द्र ! आप की इस पुत्री को कोई मानव देहधारी क्षत्रिय राजकुमार ग्रहण करेगा । वह बड़ा पराक्रमी राजा होगा । उसके राज्य की सीमा दक्षिण लङ्का तक पहुँचेगी और वह इस संसार में 'महाराजाधिराज' कहलायगा । बल, वीर्य, विद्या और कलाओं के प्रभाव से उसकी सेवा के लिए विद्याधर भी तैयार रहेंगे ।" ज्योतिषी की ऐसी बातें सुनकर लङ्कापति भ्रमरकेतु को बड़ा ही दुःख हुआ । उसने सोचा कि- "क्या इस दिव्य कन्या को कोई स्थलचारी मानव प्राणी-ग्रहण करेगा ? क्या इस लोक में कोई खेचर रहा ही नहीं ? यह बात तो कभी भी नहीं होने देनी चाहिए ।" यह सोचकर उस राक्षस राजा ने समुद्र के बीच में इस पहाड़ पर यह महल बनवाया और इस महल के भीतर जाने का द्वार कुएँ में रखा है । उसने इसी महल में राजकुमारी मदालसा को रखी है । स्वयं लङ्कापति अपने पुरुषार्थ से उसकी रक्षा करता है और मुझे भी रक्षा तथा सेवा के लिए यहाँ नियुक्त की है । राक्षस कुमारी मदालसा को उसने पाँच रत्न दिये हैं और उसके निर्वाह के लिए अन्य आवश्यक वस्तुएँ भी उसी कूप द्वार से भेजी जाती हैं । कुएँ के नीचे कनक की एक जाली लगाई गई है ताकि उसमें से कोई भूचर प्राणी अन्दर न जा सके ।

राक्षसराज ने पुनः एक बार अन्य ज्योतिषी से यह प्रश्न किया कि - "मेरी पुत्री मदालसा का विवाह किसके साथ होगा ?" ज्योतिषी ने कहा - "आपकी पुत्री का पति कोई मनुष्य राजपुत्र होगा । जहाजों में बैठे हुए मनुष्यों में से निकलकर जिस राजकुमार ने आपको हराया था, वही आपका दामाद-जँवाई बनेगा ।" भविष्यवेत्ता के मुख से यह बात सुनते ही भ्रमरकेतु को अत्यन्त क्रोध आया और वह उस मानव राजकुमार को मारने के लिए गया हुआ है । आगे क्या हुआ यह मुझे मालूम नहीं !!"

इस वृद्धा दासी के मुँह से यह सुनते ही राजकुमार ने अपने चित्त में विचार किया कि - "जिस राक्षस को मैंने कुबेरदत्त की रक्षा के लिए, लड़कर हराया था, वही राक्षस भ्रमर केतु था, और उसी की पुत्री यह मदालसा है । यह बात अभी प्रकट

नहीं करनी चाहिए: जब मौका आयगा तब देखी जायगी ।" राजकुमार को विचार मग्न देख उस वृद्धा ने पूछा - "क्यो भाई ! तुम कौन हो ? इधर कहाँ आ फँसे ?" कुमार ने उत्तर दिया - "माता ! मैं एक परनारी सहोदर मानव राजकुमार हूँ । कुबेरदत्त नामक एक व्यापारी के साथ जहाजों पर मुसाफिरी करने निकला था । मार्ग में किसी महादेवी ने मायाजाल में मुझे फँसाया था, परन्तु मैने दृढ़ता पूर्वक अपने महाव्रत की रक्षा की । अन्त में वह दिव्य सुन्दरी मेरा कठोर व्रत देखकर मुज पर प्रसन्न हुई और उसने मुझे बहुतसा द्रव्य दिया अनन्तर वह वहाँ से अंतर्धान हो गयी । इसी समय उसकी माया से वह कुबेरदत्त व्यापारी जो अदृश्य हो गया था, मेरे पास आया और उसने मुझे जहाज में बैठने का आग्रह किया । पहले, कुबेरदत्त के चले जाने से मैंने उस पर कृतघ्नता का दोष लगाया था, परन्तु जब मुझे सच्ची बात मालूम हुई तो मैंने अपनी गलती पर पश्चात्ताप करते हुए उससे क्षमा माँगी और उसके साथ जहाज में बैठकर समुद्र यात्रा आरम्भ की । कुछ दूर आगे चलकर जहाजों में बैठे हुए मनुष्यों को प्यास लगी । वे चिल्ला-चिल्ला कर मीठा पानी माँगने लगे, परन्तु किसी के पास भी मीठा पानी नहीं निकला । मल्लाहों ने नौका शास्त्र के बल से कहा कि - अब शीघ्र ही समुद्र जल से रहित एक पर्वत आनेवाला है, उस पर एक कुआ है, उस में बहुत ही मीठा पानी है, परन्तु वह जगह अत्यन्त भयानक है । उसमें भ्रमरकेतु नामक एक राक्षस रहता है । जो कोई प्राणी वहाँ जाता है वह उसे जीवित नहीं आने देता ।" मल्लाहों की ऐसी बातें सुनकर मैंने निर्भय होकर कहा - "आप सब लोग यहीं रहिए, मैं अकेला ही उस जगह जाने को तैयार हूँ । आप सब लोगों को जल लाकर पिलाना मेरा धर्म है । मैं क्षत्रिय, शरीरधारी आपके पास हाजिर होते हुए भी बिना पानी के आप लोगों के प्राण चले जायँ यह मैं कैसे देख सकता हूँ ?" इतना कह कर मैं इस कुएँ के पास आने के लिए तैयार हुआ । उन्होंने मुझे ऐसा करने से रोका । परन्तु मैंने उनके कहने पर ध्यान नहीं दिया । मैं धनुष पर बाण चढ़ा कुएँ के पास खड़ा हो गया और जहाज के लोगों से कहा - आप लोग अपने-अपने बर्तन लाकर इस कुएँ में से मीठा जल भर लो ।"

मेरे कहने पर विश्वास कर वे लोग कुएँ पर आये, और पानी भरने लगे परन्तु पात्रों में पानी आया नहीं। यह देखकर एक नाविक ने कहा - "किसीने जल को रोक दिया है, इसलिए जब तक कोई कुए में उतरकर पानी को नहीं खोलेगा तब तक पानी प्राप्त नहीं हो सकता।" मल्लाह की यह बात सुनकर जब मैं कुएँ में उतरने के लिए तैयार हुआ तो मेरे मित्र सेठ कुबेरदत्त ने मुझे रोका। किन्तु लोगों की प्यास बुझाने के लिए मैं साहस कर रस्सी के बल कुएँ में उतरा। भीतर पहुँचकर मैंने देखा कि जल के उपर स्वर्ण की जाली पड़ी हुई है। जल पात्र उस पर ठहर जाते थे और पानी नीचे रह जाता था। मैंने उस जाली को हटा कर कुएँ में से पुकार कर कहा कि "अब पानी भरो और खींचो।" यह सुनते ही लोगों ने पानी भर लिया। मैंने उस जाली के पास, कुएँ की दीवार में एक दरवाजा देखा। उसको खोलकर मैं अन्दर घुसा और यहाँ आ पहुँचा हूँ।"

राजकुमार के मुख से यह बात सुनकर वह वृद्धा बहुत ही प्रसन्न और आश्चर्यान्वित हुई। उसका साहस और परोपकार वृत्ति देखकर वह मन-ही-मन धन्यवाद देने लगी। उसके हृदय में कुमार के प्रति अत्यन्त श्रद्धा और आदर उत्पन्न हो गया।

वह बुढ़िया और राजकुमार इस तरह आपस में बातें कर रहे थे। इनकी आवाज महल में मदालसा ने सुनी। वह राक्षस कन्या शीघ्र ही नीचे आई जहाँ उसने एक अतीव सुन्दर राजकुमार को देखा। मानव आकृति में ऐसा अद्भुत सौन्दर्य देखकर वह मोहित हो गयी। उसके प्रेमी हृदय में राजकुमार की अमिट तस्वीर अङ्कित हो गयी। वह ऐसा समझने लगी - मानों मेरा आज तक का कौमार्यव्रत सफल हुआ। कुमार भी उस रूप-लावण्य सम्पन्ना सुन्दरी को देखकर स्तब्ध रह गया। उस सुन्दरी के प्रति अपने हृदय में शुद्ध प्रेम उत्पन्न होने के कारण वह मन-ही-मन सोचने लगा - "अरे, यह क्या बात है ? मैं परनारी-सहोदर हो कर भी इस पर अनुरक्त हो गया ? यह क्या कारण है ? अवश्य ही मेरा इसका कोई पूर्व सम्बन्ध होना चाहिए। नहीं तो मेरे हृदय में ऐसा विकार हो ही नहीं सकता।

मेरे पूर्व कर्म के संस्कारों से ही ऐसा हुआ मालूम पड़ता है। अन्यथा मेरे हृदय में ऐसी चंचलता क्यों पैदा होती ? यह सोचते-सोचते राजकुमार का हृदय मोह-विकार के वशीभूत हो गया । मोहित हृदय से वह विचार करने लगा - "अहा, कैसा अद्‌भुत सौन्दर्य है ? क्रूरकर्मी राक्षस कुल में ऐसी मनोहर बाला कहाँ से पैदा हुई होगी ? वज्र हृदयी राक्षस के घर में ऐसी सुकोमल सुन्दरी कहाँ से आयी ? उसका मुखचन्द्र पूर्णिमा के चन्द्र की भाँति कैसा सुन्दर चमक रहा है ? प्रवाल के समान होठों की लालिमा कैसी हृदय हारिणी है ? चकित हरिणी के समान उसके नेत्र कितने हृदय वेधक हैं ? उसकी सुन्दर नासिका, गुलाबी लिये हुए गौर-कपोल, और अर्द्धचन्द्र के समान ललाट अवर्णनीय है । उसके सुकोमल अङ्ग तथा उपाङ्गों की रमणीयता सहज ही हृदय को अपनी ओर खींच रही है ।"

जब राजकुमार अपने मन में इस प्रकार सोच रहा था तब राक्षस-पुत्री भी अपने उस सुन्दर कुमार को देखकर मोहित हो चुकी थी । उसके हृदय में भी राजकुमार के प्रति शुद्ध प्रेम का उदय हो चुका था । थोड़ी देर के लिए जब उनकी चार आँखे हुई तो परस्पर दर्शन के आनन्द से दोनों को रोमांच हो गया और आपस में दाम्पत्य भाव जोड़ने की भावना उनके हृदयों में जागरित हुई ।

इन दोनों के भावों को ताड़कर उस बुढ़िया ने विचार किया - "दैवयोग से यदि इन दोनों का दांपत्य प्रेम हो जाय तो स्वर्ण और रत्न के योग के समान हो । जैसी मदालसा मनोहर है, वैसा ही यह राज कुमार भी मनोहर है । इसके अतिरिक्त यह पराक्रमी और साहसी भी है । ऐसे वीर पुरुष को ब्याही जाने पर मदालसा सब तरह सुखी रहेगी, यह निस्सन्देह बात है । यह राजकुमार यदि इस मदालसा को यहाँ से हरण कर ले जावे तो बेचारी राक्षस-पिता के बन्धन से मुक्त हो; इतना ही नहीं साथ ही मेरा भी छुटकारा हो । इसलिए जैसे बने वैसे इन दोनों का विवाह कर देना ही ठीक है।

ऐसा सोचकर उस वृद्धा ने उत्तम कुमार और मदालसा का हाथ एक दूसरे के हाथ में देकर अपनी साक्षी से उनका वहीं पर गान्धर्व विवाह कर दिया।

आठवाँ परिच्छेद

कुबेरदत्त की नीचता

मध्याह्न के समय समुद्र में कतार बाँधे जहाज चले जा रहे थे। समुद्र तरङ्गों से नृत्य कर रहा था। सदैव पानी के भीतर रहने वाले जल-जंतु सूर्य किरणों की गर्मी लेने के लिए पानी की सतह से बाहिर अपनी पीठ निकालकर तैर रहे थे। जहाजों पर बैठे हुए यात्री अनेक सङ्कल्प-विकल्पों में निमग्न थे। काव्य-प्रेमी समुद्र की रचना पर पद्य बनाने के प्रयत्न में थे। साहसी वीर योद्धा समुद्र की तरंगों को देखकर अपने वीर हृदय को प्रोत्साहित कर रहे थे। तत्त्व-ज्ञानी लोग तरंगों की चञ्चलता के साथ इस संसार की चञ्चलता की तुलना कर रहे थे। पदार्थ विज्ञान के जानने वाले, चतुर पुरुष जल तत्त्व की सत्ता का अनुमान बाँध रहे थे और कायर-डरपोक लोग अपनी जान की खैर मना रहे थे।

यात्रियों के जहाज में कुबेरदत्त अपने एक विश्वस्त सुखानन्द नामक सेवक के साथ एक तरफ बैठकर विचार कर रहा था। दोनों में इस प्रकार बातचीत हो रही थी -

सुखानन्द-कहिये, सेठ साहिब ! किस विचार में पड़े हो ?

कुबेरदत्त-सुखानन्द ! मैं चाहे जैसा ही विचार क्यों न करूँ; परन्तु तुम्हारी सहायता बिना मेरा विचार सफल हो ही नहीं सकता।

सुखानन्द-सेठ साहिब ! मैं आपका सेवक हूँ और आप मालिक हैं। मालिक को सेवक की सहायता की जरूरत ही क्या पड़ती है ?

कुबेरदत्त-कोई न कोई ऐसा भी प्रसङ्ग आता रहता है, जिसमें सेवक की सहायता की आवश्यकता रहती है।

सुखानन्द-आपके लिए यदि मुझे अपना सिर भी देना पड़े तो मैं तैयार हूँ।

कुबेरदत्त-धन्य है। शाबाश, तूं मेरा सच्चा विश्वस्त सेवक है। मेरी इस यात्रा का सारा भार तुझ पर ही है।

सुखानन्द-सेठजी ! आप ऐसा न कहिए । आपको मुझ जैसे तुच्छ की सहायता की जरूरत ही क्यों पड़ेगी ? आप अतुल धनराशी के मालिक और मुज जैसे असंख्य सेवकों के पालक हैं ।

कुबेरदत्त-भाई सुखानन्द ! मुझे एक बात कहनी है, ध्यान पूर्वक सुनना । परन्तु यह बात तेरे विश्वास पर ही कहता हूँ । किसी दूसरे के समक्ष प्रकट न होने पावे ।

सुखानन्द-सेठजी ! इस बात से निश्चिन्त रहिए । आज दिन तक मैं आपका जैसा विश्वासपात्र रहा हूँ वैसा ही आजन्म बना रहूँगा ।

सुखानन्द के यह वचन सुनकर कुबेरदत्त ने उससे कहा - "अपने जहाज में एक सुन्दर रमणी के साथ जो उत्तमकुमार नामक युवक रहता है, उसे तूं जानता है ?"

सुखानन्द ने कहा- "हाँ मैं उन दोनों स्त्री पुरुषों को निरन्तर देखता हूँ, किन्तु उनके विषय में और कुछ भी नहीं जानता । उनके साथ एक वृद्धा स्त्री रहती है, वह कौन है ?"

कुबेरदत्त ने कहा - "थोड़े दिन पहिले जब कि अपने जहाज में मीठे पानी की जरूरत पड़ी थी तब वह उत्तम कुमार मल्लाहों के बताये हुए किसी एक पर्वत पर के कुएँ में जल के लिए उतरा था । वहाँ मीठा जल दिलाकर वह कुएँ में एक मार्ग द्वारा अन्दर गया, वहाँ किसी महल में उसे यह सुन्दरी और वृद्धा स्त्री दिखाई दी । उस बुढ़िया ने इस राजकुमार से उस सुन्दरी का विवाह कराया है । वहाँ से राजकुमार उस बुढ़िया और अपनी पत्नी को लिए अपने जहाज में आया । रास्ते में फिर जब हमलोगों को जल की जरूरत पड़ी तब उसने उस सुन्दरी से एक रत्न लेकर मीठे पानी की वर्षा की । इस स्त्री के पास पाँच चमत्कारी रत्न हैं । १ भूमिरत्न २ जलरत्न ३ तेजरत्न ४ वायुरत्न और गगनरत्न ये उन रत्नों के नाम हैं । भूमिरत्न से शयन, आसन, स्वर्ण पात्र. आभूषण वगैरह सब सामग्री प्राप्त की जा सकती है । जलरत्न के द्वारा इच्छानुसार पानी की प्राप्ति होती है । वायुरत्न शीतल और सुगन्धित पवन का संचार कर सकता है । तेजरत्न से शाक, सब्जी इत्यादि रसोई तैयार होजाती है और गगनरत्न से नवीन रेशमी वस्त्र आदि प्राप्त किये जा सकते हैं ।

इन पाँच रत्नों के कारण यह सुन्दरी प्रत्यक्ष कल्पलता है। यदि यह सुन्दरी मिल जाय तो मेरे भाग्य का पूर्णोदय हो जाय। सुखानन्द यह सुन्दरी कैसे मिल सकेगी? इस काम में तेरी पूरी-पूरी मदद की जरूरत है।''

कुबेरदत्त की यह बात सुनकर सुखानन्द गहरे विचार में पड़ गया। वह पवित्र हृदय का मनुष्य था और सच्चे मन से अपने स्वामी की सेवा करता था। उसकी सच्चाई देखकर ही कुबेरदत्त ने उसे अपना विश्वासपत्र बनाया था। वह जैसा स्वामी की आज्ञा माननेवाला था, वैसाही सच्ची और उचित सलाह देनेवाला भी था। जब कभी कुबेरदत्त, मनोविकार के वशीभूत हो अनीति अत्याचार करता तब सुखानन्द उसे रोक दिया करता था।

कुबेरदत्त की ऐसी कुबुद्धि देखकर, सुखानन्द ने नम्रता पूर्वक कहा - ''सेठजी! आपका यह विचार मुझे ठीक नहीं मालूम होता। राजपुत्र उत्तमकुमार ने अपने पर अनेक उपकार किये हैं। उसने कईबार हमें बड़ी ही आपत्ति से बचाया है। ऐसे बड़े उपकारी कुमार को उसके उपकारों का ऐसा नीच बदला देना यह नीति धर्म के विरुद्ध है। उत्तम पुरुष उपकार के बदले में अपकार कदापि नहीं करते। आप बुद्धिमान हैं, पवित्र विचारों को हृदय में स्थान दीजिए। आप जैसे कुलीन एवम् धनीमानी सज्जनों के हृदय में ऐसे कुविचार पैदा होने लगें तो फिर न जाने सद्विचारों को कहाँ स्थान मिलेगा? सेठ साहब! मैं आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ। आपकी आज्ञा मानना मेरा धर्म है। परन्तु जो आज्ञा पवित्र और नीति के अनुकूल हो उसी को मानना मेरा कर्त्तव्य है। इसी तरह जिसमें अपने स्वामी का हित हो वही कार्य मुझे करना चाहिए। इस काम में अपना हित नहीं बल्कि अहित है। क्योंकि अनीति से उठाया हुआ लाभ, लाभ की अपेक्षा हानि अधिक करता है। इसलिए कृपा कर ऐसे कुविचारों को सदा के लिए हृदय से त्याग दीजिए।''

सुखानन्द की यह बातें कुबेरदत्त को बहुत ही बुरी लगीं। उसे अत्यन्त दुःख हुआ। उसने इस बात को हृदय में छिपाते हुए कपट पूर्वक ऊपरी मन से कहा - ''सुखानन्द! जो तूं कह रहा है वह बिलकुल सत्य है। उत्तमकुमार हमारा बड़ा

ही उपकारी है। उसने दो-तीन बार हम सब लोगों के प्राणों की रक्षा की है - यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ । ऐसा दुष्कर्म करने का मेरा विचार नहीं है । सिर्फ तेरी मनोवृत्ति की पवित्रता की परीक्षा के लिए ही ऐसी बात मैने तुज से कही थी । तूं पूर्ण विश्वास रख कि कुबेरदत्त ऐसे नीच विचारों को हृदय में भूलकर भी स्थान नहीं दे सकता।"

कुबेरदत्त के यह वचन सुन कर सुखानन्द अपने मन में उसके भावों को अच्छी तरह समझ गया । वह चिर काल के सहवास से कुबेरदत्त के स्वभाव को अच्छी तरह पहिचान ने लगा था । उसने विचार किया कि - "मेरी अच्छी सलाह से सेठ साहब ने अपने कुविचार को छोड़ दिया है। अस्तु, ऐसा करने से भी लाभ ही हुआ । वह अपनी कुबुद्धि का उपयोग नहीं करेंगे । इतने पर भी यदि मुझ से छिपाकर सेठजी गुप्त रूप से अपनी कुबुद्धि के अनुसार काम करेंगे तो इनका विनाशकाल ही समझना चाहिए। "विनाशकाले विपरीत बुद्धि" - यह कहावत बिलकुल सत्य होगी।

यह सोचते हुए सुखानन्द ने प्रकट रूप में अपने सेठजी के शुभ विचारों का अभिनन्दन किया । दोनों स्वामी-सेवक अन्यान्य बातें करने लगे । इधर जहाज समुद्र में चले जा रहे थे।

नवाँ परिच्छेद

शंकित हृदया मदालसा

राजपुत्र उत्तमकुमार ने, अपनी प्रिय पत्नी मदालसा के इन रत्नों का चमत्कार जब से लोगों को दिखाया तब से सब यात्री लोग उसके प्रति श्रद्धा एवम् पूज्य बुद्धि रखने लगे । राजकुमार को वे इष्ट देव के समान मानकर उसका आदर करते थे । प्रत्येक यात्री अपने उपकारी उत्तमकुमार के गुणों की प्रशंसा करता और उसके प्रति पवित्र विचार रखता था।

पाठक ! इस विषय पर आपको विचार करना चाहिए। इस संसार में गुण कितनी अच्छी वस्तु है, गुणी पुरुष हो अथवा स्त्री, सर्वत्र पूजा, आदर, और सम्मान प्राप्त करता है। गुण के प्रभाव से आत्मा कितनी उन्नति प्राप्त करता है, इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण राजपुत्र उत्तमकुमार है। उस धर्मवीर के हृदय में उपकार करने का स्वाभाविक गुण था। इसी गुण के कारण, वह विदेशी, अज्ञात और पराया होते हुए भी, स्वदेशी परिचित और स्वजन की भाँति हो गया। यह किसका प्रभाव था ? गुण ही का था न ? गुण-गौरवता के समान संसार में दूसरी गौरवता नहीं है। इस गौरव के आगे अन्य गौरव फीके पड़ जाते हैं। गुण के विषय में जैनाचार्य्य श्री जिनहर्ष सूरिजी ने कहा है :-

"गुण पूजित सब जगत में, गुण का आदर होय।
राजा हो अथवा प्रजा, गुण पूजे सब कोय।"

इससे प्रत्येक विचार शील मनुष्य को यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि मानव जीवन को सार्थक और सफल बनाने के लिए कुछ-कुछ उत्तम गुण अवश्य प्राप्त करने चाहिए। परोपकार-गुण सर्वश्रेष्ठ है। इस महान गुण के प्रभाव से मनुष्य तीर्थङ्कर बने, गरीब अमीर हुए, और दीन-अदीन हुए हैं। गुणों के प्रभाव से, गुणी पुरुषों के यशोगान अभीतक हरदेश में गाये जाते है। और इन्हीं गुणों के ही कारण-मनुष्य सिद्ध रूप होकर सिद्धशिला के आसन पर विराज मान हो सके हैं।

अविचारी कुबेरदत्त अपना कृत्रिम प्रेम प्रदर्शित करने के लिए उत्तमकुमार के पास आया। उसने कपट पूर्वक बात चीत करनी आरम्भ की और अत्यन्त प्रेमभात्र दिखाते हुए उसकी प्रशंसा करने लगा। बोला - "राजकुमार ! आपकी परोपकार वृत्ति अलौकिक है। आपकी दिव्य बुद्धि और वर्त्ताव प्रशंसा के योग्य है। आपके दर्शनों से मेरे चित्त में अत्यन्त आनन्द होता है। मेरे स्वजनों की अपेक्षा मेरा शुद्ध प्रेम आप की तरफ विशेष रूप से आकर्षित है। प्रत्येक समय मेरे हृदय में आपके गुण, चरित्र तथा अलौकिक प्रभाव की याद बनी रहती है। मेरे हृदय में आपके लिए सदा यही भावना रहती है कि - "मैं जीवन पर्यन्त आपकी संगति में

रह कर अपने जीवन को सफल बनाऊँ। यदि मैंने पूर्वजन्म में कोई पुण्य किये हो अथवा इस जन्म में मुझ से जो कुछ भी पवित्र कार्य बने हो तो उनके बदले में उत्तमकुमार के साथ मेरा शेष जीवन व्यतीत हो, ऐसी पवित्र भावनाएँ मैं निरन्तर अपने मन में करता रहता हूँ।

इस प्रकार मधुर वचनों द्वारा कुबेरदत्त उत्तमकुमार की प्रशंसा कर लौट गया। वहाँ जाकर उसने अपने विश्वास पात्र सेवक सुखानन्द से कहा - "सुखानन्द ! तूं जाकर उत्तमकुमार से पूछना तो सही कि मैंने उसके प्रति अपने कैसे भाव प्रकट किये है ? उनको जान लेने पर तुझे विश्वास हो जायगा कि कुबेरदत्त कितने पवित्र विचारों का व्यक्ति है; एवं अपने उपकारी उत्तमकुमार के लिए उसके हृदय में कैसा आदर-मान है ?"

अपने सेठ के इन वचनों को सुनकर सुखानन्द के हृदय में पूर्ण विश्वास हो गया कि, सेठ कुबेरदत्त ने अभी तक कुबुद्धि नहीं त्यागी है। वह अपने कुविचारों को कपट भाव से छिपाने का प्रयत्न करता है। देखना चाहिए, आगे क्या होता है ? शासन देवता ! सेठ साहिब को सुबुद्धि प्रदान करो।" इधर जब कुबेरदत्त उत्तमकुमार से मीठी-मीठी बातें बनाकर चला गया तब मदालसा के हृदय में उसके प्रति शंका उत्पन्न हुई। उस चतुर बाला ने सोचा कि - "जहाँ शुद्ध प्रेम होता है वहाँ खुशामद की आवश्यकता नहीं होती। प्रेम के शुद्ध पाठ में खुशामद के अपवित्र वचन आ ही नहीं सकते। इसमें कुछ न कुछ दगा अवश्य है। सेठ कुबेरदत्त की बोली में प्रत्यक्ष दोष मालूम पड़ता है। उसकी मनोवृत्ति में अवश्य ही कुछ विकार पैदा हो गया है। इस बात की सूचना मुझे अपने भोले पति को अवश्य देनी चाहिए, वर्ना परिणाम ठीक न होगा।" यह सोचकर मदालसा ने अपने पतिदेव से कहा - "प्राणनाथ ! इस कुबेरदत्त सेठ के प्रति मेरे हृदय में शंका होती है। मुझे उसकी वाणी के माधुर्य में जहर मिला हुआ मालूम होता है। उसके हृदय पर पाप की गहरी छाया पड़ी हुई है। इसलिए आप उस पर भूलकर भी कभी विश्वास मत करना।"

मदालसा के इन वचनों को सुनकर उत्तमकुमार कहने लगा - "प्रिये ! यह तुम्हारी शंका व्यर्थ है। कुबेरदत्त परोपकारी पुरुष है। मेरे प्रति उसके हृदय में पवित्र प्रेम है। उसकी वाणी में जो माधुर्य है वह बनावटी नहीं स्वाभाविक है।" मदालसा ने नम्रता से कहा - "स्वामिन् ! आपकी मनोवृत्ति निर्मल होने के कारण आपको सभी अपने समान सरल वृत्ति के दिखाई पड़ते है। परन्तु मेरी यह शंका सत्य है। संभवतः किसी समय यह सेठ आपके कथनानुसार पवित्र रहा होगा यह मैं मान सकती हूँ, किन्तु इस समय तो उसके विचारों में विकार भरा पड़ा है, यह बात निस्सन्देह है। कारण मेरे सौन्दर्य और मेरे रत्नों की समृद्धि देखकर उसके मन में बुरे भाव पैदा हुए हैं। इस विषय में मुझे नीति का एक श्लोक याद आता है -

"पुष्पं दृष्ट्वा फलं दृष्ट्वा, दृष्ट्वा च नव यौवनाम्।
द्रविणं पतितं दृष्ट्वा, कस्य नो चलते मनः" ॥

अर्थात् :- "पुष्प, फल, यौवन और पड़े हुए धन को देखकर किसका मन नहीं चलायमान होता ?"

और भी एक विद्धान का कहना है कि - "धूर्त मनुष्य दिखने में बड़े ही सज्जन गुणी मालूम होते हैं। कुलटा स्त्रिएँ बहुत लज्जा प्रदर्शित करती हैं। खारा पानी बहुत होता है और ऐसे फल जिन्हें लोग नहीं खाते वृक्ष पर खूब लगते हैं।"

देवी मदालसा का यह कथन उत्तमकुमार के हृदय में कुछ जँचा नहीं। उसने हँसकर कहा- "प्रिये ! तुम्हें ऐसी शंका नहीं रखनी चाहिए। सेठ कुबेरदत्त पवित्र है। उसके हृदय में मेरे लिये अगाधप्रेम है।"

पति के यह वचन सुनकर मदालसा मन-ही-मन विचार करने लगी। "देखो, कर्म की कैसी विचित्र गति है ? मेरे स्वामी इतने चतुर होकर भी इस समय कर्म के प्रभाव से कैसी भूल कर रहे हैं ? नीच कुबेरदत्त का कुटिल हृदय पहिचानने में वे असमर्थ हैं। अरे कर्म ! तेरी सत्ता के आगे किसी का भी वश नहीं चलता। देव हो अथवा मनुष्य हो किन्तु तेरे सामने सभी हार मान लेते हैं। विद्या सम्पन्न, तर्कशास्त्र के पारदर्शी, नीतिनिपुण, और केवल देखकर ही मानव हृदय की परीक्षा कर लेने

वाले महाशय भी आज तेरे चक्कर में पड़े हुए है।"

यह सोचते हुए, राक्षस बाला ने पुनः अपने पति देव से हाथ जोड़कर कहा - "स्वामिन् ! आपके हृदय पर मेरे वचनों का कुछ भी असर नहीं होता, परन्तु इसका फल अच्छा नहीं होगा। कुबेरदत्त के हृदय पर कुटिलता का काला पर्दा गिरा हुआ है - यह निश्चय समजिए। उसकी बातें शुद्ध नहीं हैं। उसके मन, वचन, और शरीर में कपट की अपवित्र छाया प्रवेश कर गयी है। प्राणनाथ ! इस दासी के वचनों पर ध्यान दीजिए। इस कपटी व्यक्ति का भूलकर भी आपको विश्वास नहीं करना चाहिए।" मदालसा के यह वचन सुनकर उत्तम कुमार ने समझाते हुए कहा - "हे शङ्कित हृदये ! ऐसी मलीन शंका मन में मत लाओ। परोपकारी कुबेरदत्त सब तरह से पवित्र है। उसके हृदय की पवित्रता का प्रतिबिम्ब मेरे हृदय में पड़ चुका है। इसलिए मुझे उस पर पूरा विश्वास है।

पूर्व कर्मो की प्रेरणा से उत्तमकुमार अपनी जिद्द पर अटल था। उसके हृदय का विश्वास कुबेरदत्त पर ज्यों का त्यों था। वह बार-बार कुबेरदत्त के पास जाता, और कुबेरदत्त उसके पास आता। इस तरह शुद्ध और अशुद्ध प्रेम के बीच परस्पर व्यवहार चलता था। परन्तु पतिभक्ति-परायणा मदालसा सदैव कुबेरदत्त की तरफ से शंकित हृदया रहती थी। उसकी यह शंका अन्त में सत्य हुई। कुटिल हृदयी कुबेरदत्त ने एक दिन रात के समय धोके से उत्तमकुमार को समुद्र में धक्का दे ही दिया।

दसवाँ परिच्छेद

पाप का भण्डा फूटा

समुद्र के किनारे एक बन्दरगाह है। उसी के पास एक छोटी सी राजधानी भी है। लोग इस राजधानी को मोटपल्ली कहते हैं। अनेक देशों के लोग यहाँ व्यापार करने के लिए आते-जाते रहते हैं। तरह-तरह की उत्तमोत्तम वस्तुओं से नगर के बाजार भरे पड़े हैं। व्यापार लक्ष्मी की प्रसन्नता से समस्त प्रजा सुखी है। व्यापारियों की हवेलियाँ नगर के बीच में बनी हुई है; जहाँ विविध भाँति के आनन्दोत्सव होते रहते हैं।

इसी सुन्दर नगर में एक नरवर्मा नामक राजा राज्य करता है। राजा नरवर्मा जैन धर्म का उपासक है। उसके मनोहर राजमहल में एक सुन्दर जिनालय भी बना हुआ है। राजा नरवर्मा वहाँ जाकर त्रिकाल जिन दर्शन पूजन करता है। धार्मिक वृत्ति वाले महाराजा नरवर्मा के नीति युक्त राज्य में सब तरह से प्रजा सुखी है।

एक समय राजा नरवर्मा राज-काज से निवृत्त हो महलों में बैठा हुआ था। मुख्य सेवक उसके हृदय को शान्त एवम् प्रसन्न रखने के लिए अनेक तरह की सेवाएँ कर रहे थे। कोई उसके पैरों को दबा रहे थे, कोई शीतल एवम् सुगन्धित द्रव्य लिये हाजरी में खड़े थे, कोई मोर पंख के कोमल पंखे से हवा कर रहा था। कोई स्वर्ण की तश्तरी में पान बीड़े बगैरह मुखवास द्रव्य लिये खड़ा था। कोई उसके हृदय को प्रसन्न करने के लिए मधुर स्वर से गायन कर रहा था।

इस प्रकार राजा नरवर्मा अपने सेवकों द्वारा सुश्रूषा करवाते हुए आसन पर विराजमान थे। इतने ही में एक छड़ीदार ने आकर नमन करते हुए कहा - "सरकार ! कोई एक प्रतिष्ठित गृहस्थ एक सुन्दर स्त्री के साथ आप से मिलने के लिए अन्दर आने की आज्ञा चाहता है, क्या हुक्म है ? राजा ने स्त्री सहित उसे भीतर आने की आज्ञा दी। छड़ीदार उन दोनों स्त्री पुरुषों को दरबार में ले आया। वह युवक शिष्टाचार पूर्वक प्रणाम करके पास ही में खड़ा हो गया। वह कुलीन बाला

भी जिस तरह पुत्री अपने पिता को प्रणाम करती है, उसी तरह राजा को प्रणाम कर खड़ी हो गयी। राजा ने उन्हें उचित आसन पर बैठने की आज्ञा दी। वे दोनों उसके सामने बैठ गये। बैठ जाने के बाद राजा ने पूछा तुम कौन हो ? और तुम्हारे साथ यह स्त्री कौन है ? यहाँ क्यों आये हो ?''

उसने नम्रता पूर्वक कहा - ''महाराज ! मैं कुबेरदत्त नामक एक व्यापारी हूँ। मेरा व्यापार जल मार्ग द्वारा होता है। कल मेरे जहाज आपके बन्दर पर आकर लगे हैं। यह स्त्री मुझे चन्द्र द्वीप से मीली है और यह मेरे साथ विवाह करना चाहती है। यदि आप आज्ञा दें तो आपकी साक्षी से मैं इस स्त्री से विवाह कर लूँ।''

सेठ कुबेरदत्त के यह वचन सुनकर, न्यायी महाराजा ने उससे पूछा - ''बहिन ! यह सेठ जो कुछ भी कहता है, क्या वह सत्य है ? इसके साथ विवाह करने में तूं राजी है ?'' राजा के मुँह से ''बहिन'' शब्द सुनते ही उस रमणी के चित्त में पूर्ण विश्वास हो गया कि - ''यह राजा मेरे धर्म की रक्षा अवश्य ही कर सकेगा।'' उसने निर्भय होकर कहा - ''हे प्रजापालक, मेरे पिता रूप महाराज ! यह सेठ जो कुछ भी कहता है, वह बिलकुल झूँठ है। यदि आप मेरा वृत्तान्त शुरू से सुनेंगे तो आपको इसके कपट-जाल का पूरा पता लग जायगा।''

रमणी के यह वचन सुनकर न्यायी राजा ने बड़ी ही उत्सुकता से पूछा - ''बहिन ! शान्त और निःशंक होकर जो कुछ भी सत्य घटना हो वह निर्भय होकर मुझसे कहो। दुखी जनों का दुःख दूर करना हमारा धर्म है।'' राजा के यह वचन सुनकर वह स्त्री निर्भयता पूर्वक कहने लगी - ''धर्म-पिता ! मेरा नाम मदालसा है। मैं एक अन्यायी राक्षस की पुत्री हूँ। मेरे पिता ने यह निश्चय करके, मुझे एक गुप्त महल में रखी थी कि वह किसी मनुष्य के साथ मेरा विवाह नहीं करेगा। मेरी रक्षा के लिए मेरे पिता ने मेरे पास एक बुढ़िया स्त्री को भी रखा था। उस कारागार रूपी महल में मैं बहुत बरसों तक रही। एक दिन दैवयोग से वाराणसी नगरी के राज-पुत्र उत्तमकुमार वहाँ आ पहुँचे। उस राजपुत्र को सर्वगुण सम्पन्न देखकर मैंने उससे अपना प्रेम सम्बन्ध कर लिया। हम दोनों को

एक दूसरे पर अनुरक्त देखकर मेरी रक्षिका बुढ़िया ने हमारा वहीं पर गान्धर्व विवाह कर दिया । बाद में हम तीनों चुपचाप महल से बाहर निकल आये । यह सेठ कुबेरदत्त उधर से जहाज लिये कहीं चले जा रहे थे । इनका हमारा साथ हो गया । हम लोग इसके आग्रह से इसी के जहाज में बैठे । मार्ग में जो कुछ भी विघ्न आते थे उन्हें मैं अपने पास के पाँच रत्नों द्वारा दूर करती रहती थी । थोड़ी दूर जाने पर इस पापी सेठ के चित्त में कुबुद्धि उत्पन्न हुई । इस पापी ने मेरे पति को जो इस पर पूर्ण विश्वास रखते थे, समुद्र में धक्का देकर गिरा दिया । मेरे पति को समुद्र में धक्का दे देने के कारण मुझे अत्यन्त दुःख हुआ । मैं भी उनके पीछे समुद्र में कूदकर प्राण देने के लिए तैयार हुई । किन्तु उस वृद्धा स्त्री ने मुझे ऐसा करने से रोक दिया । राजेन्द्र ! उसके बाद मैं पति वियोग से रुदन कर रही थी कि, मेरे पास यह पापी सेठ आया, और मुझे अपने आधीन होने के लिए कहने लगा । समुद्र के बीच इसकी सत्ता के वशीभूत होने के कारण मैंने विचार किया कि - "यदि मैं इस समय इस पापी का तिरस्कार करूँगी अथवा इसके विरुद्ध होऊँगी तो यह किसी-न-किसी उपाय से मेरे धर्म को अवश्य ही नष्ट करेगा ।" यह सोचकर मैंने इस पापी को शान्त रखने के लिए कहा - "सेठजी ! आप धैर्य रखिए, इस समय मुझे आपका ही आधार है । मैं आपकी आज्ञा पालन करने के लिए तैयार हूँ । किन्तु मेरे स्वर्गस्थ पति की दस दिन तक की उत्तर क्रिया से निपटकर किसी भी राजा की आज्ञा से आपको अपना पति बनाऊंगी ।" मैंने अपने पतिव्रत धर्म की रक्षा के लिए इस पापी सेठ को इस प्रकार समझाकर खुश कर दिया था । अब, जब मुझे आपकी पवित्र शरण प्राप्त हुई तब मैंने आपके सामने निर्भय होकर यह सत्य वृत्तान्त निवेदन किया है।

मदालसा की यह बातें सुन कर राजा नरवर्मा सेठ कुबेरदत्त पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ । तत्काल उसने अपने सेनापति को बुलाकर हुक्म दिया कि "इस दुष्ट व्यभिचारी सेठ का सब माल अपने कब्जे में कर लो, और इसे जेलखाने में बन्द कर दो ।" राजा की आज्ञा होते ही सेनापति कुबेरदत्त को बान्धकर जेलखाने में ले

गया और उसका सारा माल जब्त करके राजखजाने में जमा करा दिया ।

महाराजा नरवर्मा ने मदालसा से नम्रता पूर्वक कहा - "बेटी ! अब तूं निर्भय हो गयी है । मेरे तिलोत्तमा नामक एक पुत्री है, उसके साथ तूं मेरे अन्तः पुर में रह । तूं भी मेरी दूसरी धर्मपुत्री है । तेरी इच्छा हो उतना दान पुण्य करना । विविध स्वाध्याय और धर्म-ध्यान में अपना समय व्यतीत करना ।"

प्यारे पाठक ! पापी कुबेरदत्त की दशा देखकर जरा विचार कीजिए । "जैसी करनी वैसी भरनी" यह कहावत कुबेरदत्त के लिए चरितार्थ हुई । व्यापार में प्रतिष्ठा प्राप्त कर कुबेरदत्त ने मदालसा की तरफ बुरी नजर की और उसके निर्दोष, एवम् विश्वस्त पति उत्तमकुमार को धोके से समुद्र में डाल दिया । इस घोर पाप का फल उसे थोड़े ही समय में मिल गया । उस भयङ्कर पापों ने ही राजा नरवर्मा के हृदय में प्रेरणा की और न्यायी राजा ने पापी कुबेरदत्त को मिट्टी में मिला दिया - माल जब्त कर के जेल खाने में बन्द कर दिया । मनुष्य चाहे जितनी युक्ति से, और चाहे जितने गुप्त रीति से भी पाप क्यों न करे, परन्तु उसके कड़वे - फल भोगे बिना उसका पीछा नहीं छूट सकता ।

पति विरहिणी मदालसा राजा नरवर्मा के अंत-पुर में उसकी पुत्री तिलोत्तमा के साथ रहने लगी । वह निरन्तर अपने पति को याद करके रोया करती तथा अपने धर्म की रक्षा में सावधान रहती थी ।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

तिलोत्तमा का मिलाप

सती मदालसा, राजा नरवर्मा के अन्तःपुर में राजकुमारी तिलोत्तमा के साथ रहा करती थी। यह जानते हुए भी कि मेरा पति समुद्र में डूब गया है - वह पवित्र बाला अपने पति से मिलने की पूर्ण आशा रखती थी। शुभ-स्वप्न के कारण तथा मानसिक प्रसन्नता के कारण उसे पूर्ण विश्वास हो गया था कि, मुझे मेरे पति अवश्य मिलेंगे। वे मरे नहीं जीवित हैं। इत्यादि -

मदालसा, तिलोत्तमा के एकान्त महल में रहती थी। वह पवित्र रमणी अपने पांच रत्नों के प्रभाव से, दान धर्म करती थी। हमेशा जैन-धर्म के ग्रंथो का मनन करती, और तिलोत्तमा को पढ़कर सुनाया करती थी। वह शरीर में तेल उबटन आदि लगाकर स्नान, तथा चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों का लेपन नहीं करती थी। जमीन पर सोती और नवीन वस्त्रालंकार धारण नहीं करती थी। सुगन्धित पुष्प तथा इत्र फुलेल काम में नहीं लाती, तथा कभी पान भी नहीं खाती थी। स्वादिष्ट भोजन, मधुर मेवा, दूध दही, घी, मिठाई, कन्द मूल, हरी वस्तु वगैरह का उसने त्याग कर दिया था। हमेशा वह एक ही वक्त भोजन करती थी। वह भूलकर भी महल के आगे के गवाक्षों में नहीं बैठती थी। शृङ्गार रसपूर्ण कथाएँ, वार्ताएँ, कविताएँ और गाथाएँ आदि वह न तो गाती ही और न सुनती ही थी। शृङ्गार काव्य का पढ़ना या सुनना उसने त्याग दिया था। किसी भी पुरुष के साथ वह बात-चीत नहीं करती थी और न उसके सामने देखती ही थी। वह सदैव नवकार मन्त्र का जप करती तथा जिनेन्द्र भगवान का ध्यान किया करती थी। महान् पुरुषों के तथा धर्म वीरों के और सती साध्वी स्त्रियों के चरित्र, तथा धर्म, नीति और वैराग्य विषयक ग्रंथों को पढ़ा करती थी।

एक दिन राजपुत्री तिलोत्तमा ने मुस्कुराकर पूछा - "बहिन मदालसा ! तुम सांसारिक स्त्री होकर एक साध्वी की भाँति ऐसे कठिन नियमों का पालन

क्यों करती हो ? यद्यपि मैं तुम्हारे आचार-विचार और नियमों की दृढ़ता देखकर बहुत प्रसन्न होती हूँ तथापि केवल जानने के लिए ही मैंने आपसे यह प्रश्न किया है।''

मदालसा ने मुस्कुराते हुए कहा - ''बहिन तिलोत्तमा ! मैं एक विवाहित वियोगिनी स्त्री हूँ । मेरे निर्दोष पति को पापी कुबेरदत्त ने बुरे विचारों से प्रेरित हो, समुद्र में धकेल दिया है। कई शुभ चिन्हों से मुझे अपने पति के पुनः मिलने की आशा है । जब तक मुझे मेरे पति देव के दर्शन न होंगे तब तक मैंने ऐसा नियम पालन करने का निश्चय कर लिया है । प्रिय बहिन ! अपने शास्त्रों में सती और कुलीन स्त्रियों के धर्म की व्याख्या इस प्रकार है - ''जो सुन्दरी पति वियोगिनी हो, उसे सब शृङ्गार त्याग देने चाहिए । पति की अनुपस्थिति में कुलीन स्त्रियों को गहने-कपड़ों से सज-धज कर नहीं रहना चाहिए। न मिष्ठान्न भोजन करना चाहिए, और न पर पुरुष को देखना ही चाहिए। बहिन ! पहिले जैन सतियों ने जिस सतीत्व के कारण सत्कीर्ति प्राप्त की है उसका एक मात्र कारण केवल उनका उच्च आचरण ही था । जिस तरह विवाहित स्त्री को पति की अनुपस्थिति में अपना वर्तन रखना चाहिए, वैसा ही कुमारी कुलीन कन्याओं को भी उसी के समान आचरण रखना चाहिए । अपने पति के घर रहती हुई कुलीन कन्या कभी सुशोभित शृङ्गार धारण कर सकती है परतु उसे पर पुरुष से तो दूर ही रहना चाहिए। इसी तरह कन्या को अपने माँ-बाप की आज्ञा में रहकर कन्याव्रत पालन करना चाहिए।''

राक्षस पुत्री मदालसा के यह वचन सुनकर राजकुमारी तिलोत्तमा बहुत प्रसन्न हुई । उसने हृदय से मदालसा के वचनों का अभिनन्दन किया ।

यह दोनों, सहोदर बहिनों की भाँति प्रेम पूर्वक रहा करतीं और शिक्षारूपी कल्पवृक्ष के मधुर फलों का आस्वादन करती रहतीं । तिलोत्तमा, मदालसा से अच्छी शिक्षाएँ ग्रहण करती थी और उसका आदर भी वह उतना ही करती थी जितना कि एक गुरु का शिष्य को करना चाहिए । ये दोनों धर्म, ज्ञान और नीति साहित्य की चर्चा में अपना समय आनन्द पूर्वक बिताती

थीं । कभी-कभी तिलोत्तमा अपने शहर की अन्य विदुषी श्राविकाओं को बुलाकर सभा करती और उसमें मदालसा के अच्छे - अच्छे व्याख्यान करवाती थी । पवित्र हृदया मदालसा अपनी योग्यता के अनुसार अच्छे - अच्छे विषयों पर व्याख्यान देकर मोटपल्ली नगर की स्त्रियों को आनन्दित करती थी ।

बारहवाँ परिच्छेद

विश्वकर्मा का अवतार

लोगों का हो हल्ला मच रहा था । मजदूर झुंड के झुंड घूम - फिर रहे थे । कोई पत्थर चीर रहा था कोई गढ़ता था, कोई रेत रहा था और कोई मुखिया बनकर दूसरों को आज्ञा दे रहा था । एक तरफ कोरणी का काम चल रहा था, दूसरी ओर चित्रकार नये - नये रंग तैयार किये खड़े थे और एक तरफ बढ़ई काष्ठ पर कोरणी का काम करते थे ।

इसी समय उस जगह वहाँ एक तरुण पुरुष आ पहुँचा । वह वहाँ खड़ा होकर यह सब दृश्य देखने लगा । थोड़ी देर इधर - उधर देखकर वह वहाँ टहलने लगा । इसी समय उसे एक विशालकाय मोटा ताजा प्रौढ़ पुरुष दिखाई पड़ा । उस प्रौढ़ पुरुष ने इस तेजस्वी तरुण को देखकर प्रणाम किया । तरुण पुरुष ने उसका सम्मान करते हुए नम्रता पूर्वक पूछा - "आप कौन हैं ? और यह क्या हो रहा है ?"

"महाशय ! मैं मिस्त्री हूँ । हमारे महाराज की आज्ञा से उनकी राजकुमारी के लिए यह नया नहल बनाया जा रहा है । महाराजा ने उदार चित्त होकर बड़ी प्रसन्नता से इस महल का कार्य आरम्भ करवाया है । ऊँचे दर्जे की कारीगरी से इस महल की रचना की गयी है । इस महल को बनवा देने का सब काम मुझे सौंपा गया है और मेरी देख - रेख में यह काम चल रहा है ।"

मिस्त्री के यह वचन सुनते ही उस तरुण पुरुष ने कहा - "भाई ! इस महल की रचना बड़ी ही सुन्दर हुई है परन्तु इसमें कुछ त्रुटियां रह गयी हैं । यदि आप

जानना चाहें तो बता दूँ ?" मिस्त्री ने प्रसन्न होकर कहा - "भद्र ! यदि आप मुझे इस काम की त्रुटियाँ बता देंगे तो मैं आपका बहुत बड़ा आभार मानूँगा । कोर-करस जान लेने से ज्ञान की वृद्धि ही होती है।"

मिस्त्री के नम्र एवम् समयोचित वचनों को सुनकर वह युवक प्रसन्न हुआ और उसने हँसते - हँसते कहा - "महाशय ! मैं आपका सरल स्वभाव देखकर बहुत ही खुश हुआ हूँ । आप जैसे शुद्ध-हृदय-मनुष्य इस संसार में विरले ही मिलेंगे । अनेक अल्पज्ञ गुणीजन अपने गुणों का बहुत ही घमण्ड करते हैं । स्वयम् कला अथवा गुणों में अधूरे होते हुए भी "हम सर्वज्ञ है" ऐसा मिथ्याभिमान करते हैं । ऐसे लोग अपना ज्ञान कदापि नहीं बढ़ा सकते । कई एक व्यक्ति ऐसे भी होते हैं कि, यदि उनके कार्य में किसी प्रकार की त्रुटि दिखाई जाय तो वें अपने मन में अप्रसन्न होते हैं । और कई तो लड़ने-झगड़ने तक तैयार हो जाते हैं । आपके मन में वह ओछापन नहीं है, इसलिए आप अवश्य ही धन्यवाद के पात्र हैं ।"

उस तरुण पुरुष के ऐसे वचन सुनकर वह मिस्त्री अपने मन में बड़ा ही प्रसन्न हुआ । साथ ही उसने अपने काम में कसर बताने का आग्रह किया । उस तरुण ने मिस्त्री को शिल्प शास्त्र-द्वारा वह गलती दिखाई । मिस्त्री ने अपनी भूल सहर्ष स्वीकार की और वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ । शिल्प विद्या का उसे धुरंधर पंडित देख मिस्त्री ने उसे धन्यवाद और शाबाशी दी और उसकी बुद्धि की मुक्त कंठ से प्रशंसा की ।

मिस्त्री ने आनन्दित हो आश्चर्य पूर्वक प्रश्न किया - "भाई ! आप का शिल्प चातुर्य देखकर मुझे बड़ा ही आनन्द हो रहा है । आप कौन हैं । और यहाँ आने का क्या कारण है ?" तरुण ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया - महाशय ! मैं एक मुसाफिर हूँ । विदेशों के कौतुक देख ने की इच्छा से घूमने निकला हूँ । मेरी इच्छा होती है जहां पर रहता हूँ और मेरी इच्छा होती है वहाँ से चल देता हूँ ।"

उस तरुण के यह वचन सुनकर मिस्त्री ने नम्रता पूर्वक कहा - "भाई ! यदि कृपा करके मेरे यहाँ रहो तो, मुझे बहुत लाभ होगा । दूसरों को जिससे लाभ

पहुँचता है उस बात को महात्मा - पुरुष खुशी से मान लेते हैं ।'' मिस्त्री की इस प्रार्थना पर वह तरुण उस मिस्त्री के घर पर रहने लगा, और अपनी शिल्पशास्त्र की विद्वता से वह उस मिस्त्री के लिए एक अच्छा सहायक बन गया ।

पाठक ! आपके हृदय में इस बात का रहस्य जानने की इच्छा बलवती हो उठी होगी । इसलिए यहाँ इसे स्पष्ट कर देना ठीक है । जो यह महल बन रहा है, वह महाराजा नरवर्मा का है । वह अपनी राजकुमारी तिलोत्तमा और मदालसा के रहने के लिए यह सुन्दर महल बनवा रहा है । महल की रचना में विपुल धन खर्च किया जायगा । यह तरुण पुरुष अपनी कथा का मुख्य नायक उत्तमकुमार है । पुण्य के प्रभाव से तथा आयुष्य एवम् कर्मबल से उत्तमकुमार समुद्र के भयङ्कर तूफान में से बचकर सकुशल यहां आ पहुँचा है । उसका यहाँ पर राजा के मिस्त्री से मिल-मिलाप हुआ । उत्तमकुमार ने वाराणसी नगरी की पाठशाला में विद्या तथा कला की अच्छी शिक्षा प्राप्त की थी, इसीलिए उसकी शिल्प कला पर वह मिस्त्री इस प्रकार मुग्ध हो गया है ।

पापी कुबेरदत्त ने जब उत्तमकुमार को समुद्र में फेंक दिया, तब वह गहरे जल में जा गिरा । सब कलाओं में निपुण होने के कारण उस राजकुमार ने अगाधपानी में तैरना आरम्भ किया । जब राजकुमार महासागर में तैरता हुआ आगे बढ़ रहा था, तब एक मगर आया और वह राजकुमार को ज्यों-का-त्यों निगल गया । उत्तमकुमार को निगल कर वह मगर तैरता हुआ मोटपल्ली नगर के पास आ पहुँचा, जहाँ पर कुछ धीवरों ने जाल डालकर उसे पकड़ लिया । मत्स्य भोजी धीवर उस मगर को अपने घर ले आये, और उसको चीरने पर उसके पेट से उत्तमकुमार जीवित निकला । उत्तमकुमार की अनुपम तेजस्वी मूर्ति को देखकर धीवरों ने विचार किया कि ''यह कोई महान् पुरुष है । इसलिए इसे अपने यहाँ ही रखना चाहिए ।'' यह सोचकर राजकुमार को उन धीवरों ने अपने घर पर रखा और शुद्ध हृदय से उसकी सेवा करने लगे ।

एक दिन उत्तमकुमार धीवरों के घर से निकलकर, मोटपल्ली नामक

नगर देखने की इच्छा से घूमने लगा। वह घूमता-फिरता इस नये बनते हुए महल के पास आ पहुँचा ? वहाँ उसकी राज्य के मुख्य मिस्त्री से भेंट हुई, इत्यादि वृत्तान्त पाठकों को अच्छी तरह मालूम है।

उत्तमकुमार घर से चले जाने पर बन्दरगाह पर रहनेवाले घीवरों ने उसकी बड़ी ढूँढ खोज की, परन्तु कहीं भी वह उन्हें दिखाई नहीं पड़ा। अन्त में वे लोग पछताकर कहने लगे - "ऐसा उत्तम पुरुष हमें अब कहाँ मिलेगा ? वास्तव में हमलोगों ने एक अमूल्य रत्न खो दिया है।" यह कहते हुए वे सब दुःख और पश्चात्ताप करने लगे।

इधर उत्तमकुमार की देख - रेख में उस राजमहल का काम अच्छी तरह चलने लगा। शिल्प शास्त्र वर्णित गृह निर्म्माण - नियम के अनुसार महल में अलग अलग भाग तैयार कराये गये। प्रत्येक भाग में अच्छी से अच्छी कारीगरी की गयी थी। थोड़े ही दिनो में यह मनोहर महल बनकर तैयार हो गया। यह महल सात मँजिला बनाया गया था। उसमें सभा भवन, शयनागार, विद्यामंदिर, क्रीड़ास्थान, मंत्रणागृह, शान्तिसदन, और शृगार-मन्दिर आदि अलग-अलग भाग, विशाल, रमणीय और सुन्दरता से बनाये गये थे। हरेक भाग में कोरे हुए खंभे और उनपर रंग वगैरह से सुशोभित पुतलियाँ लगायी गयी थीं। उत्तमकुमार ऐसी शिल्प विद्या में अत्यन्त प्रवीण था परन्तु उसमें अहंकार नहीं था। साथ ही वह अपने गुण को छिपाकर रखने वाला नहीं था। वह स्वयम् राजमिस्त्री को तथा दूसरे कारीगरों को अपनी गुप्त कलाएँ बता देता और उनके साथ शुद्ध मन से व्यवहार करता था।

आज कल कई गुणीजन अपने गुणों को गुप्त रखते हैं, और मरते दम तक किसी को भी गुप्त कलाओं का रहस्य नहीं बताते - साथ ही अपने गुण का घमण्ड करते हुए दूसरे को अपने से तुच्छ भी समझते हैं। कई लोग तो कपट से, दूसरे को सिखाने की आशा भरोसा देकर उससे अपनी सेवाएँ कराते रहते हैं। ऐसे गुणी लोग बिलकुल अधम गिने जाते हैं तथा जगत उनकी निन्दा करता है।

उत्तमकुमार इस दुर्गुण से मुक्त था । वह निष्कपट होकर अपनी गुप्त कलाएँ भी दूसरों को सिखा दिया करता था और उन्हें अच्छी सूचनाएँभी दिया करता था !

एक दिन राजा नरवर्मा उस नये महल को देखने आया । राजा को आया देख खुद राजमिस्त्री तथा दूसरे कारीगर उत्तमकुमार को साथ ले उसके पास पहुँचे । राजा ने घूम-फिरकर महल को ध्यानपूर्वक देखा । उसकी सुन्दर रचना तथा अद्भुत कारीगरी देखकर नरवर्मा बहुत ही प्रसन्न हुआ । ऐसे दिव्य और अद्भुत शिल्प कार्य के लिए महाराजा ने अपने मिस्त्री को धन्यवाद देते हुए और अनेक प्रशंसा सूचक वाक्य भी कहे । उस समय कृतज्ञता के गुण को जानने वाले मिस्त्री ने, उस उत्तमकुमार को आगे करते हुए कहा - "सरकार ! इन सब प्रशंसाओं का पात्र मैं नहीं बल्कि ये महाशय हैं । यह वीरनर, शिल्प शास्त्र का पूर्ण विद्वान है । इसी की सहायता से हम इस राज महल को इतना अच्छा तैयार कर सके हैं ।" यह सुनकर राजा नरवर्मा को महान आश्चर्य हुआ । राजकुमार की मनोहर आकृति देखते ही उसके हृदय में राजकुमार के प्रति विश्वास और प्रेम उत्पन्न हो गया । महाराज ने, उसका आदर करते हुए पूछा - "भद्र ! आप कौन हैं ? और हमारे भाग्य से आप यहाँ कहाँ से आये हैं ?" राजकुमार ने विनय पूर्वक कहा - "महाराज ! मैं एक क्षत्रिय पुत्र हूँ और देशाटन करने के लिए घर से चल पड़ा हूँ।"

राजा ने हँसते हुए पूछा - "आपने यह शिल्पविद्या कहाँ सीखी ?" राजकुमार ने विनीत वचनों में कहा - "राजेन्द्र ! वाराणसी नगरी के कलाभवन में रहकर मैंने यह विद्या पढ़ी है । इसमें मैंने कुछ नयी बात तो की ही नहीं । क्योंकि समस्त कलाएँ सीखना क्षत्रिय कुमार का धर्म है ।" कुमार के ऐसे निर्भय वचन सुनकर महाराजा नरवर्मा बहुत ही प्रसन्न हुआ । उसी समय राजा ने उत्तमकुमार को अपने महल में आने के लिए निमन्त्रित किया । राजकुमार ने उदारता पूर्वक निमन्त्रण स्वीकार करते हुए दूसरे दिन हाजिर होने को कहा ।

राजकुमार को निमन्त्रित कर जब राजा नरवर्मा वहाँ से चलने लगे तब उस मिस्त्री ने विनय पूर्वक कहा - "महाराज ! यह युवक सचमुच विश्वकर्मा का अवतार है । इसलिए इसे अपने यहाँ आश्रय देकर रख लेना चाहिए । ऐसे गुणी मनुष्यों ही से राज्य की शोभा है।"

मिस्त्री की प्रार्थना को ध्यान में रखकर राजा नरवर्मा अपने महल में लौट गया । राजा के चले जाने के बाद उस मिस्त्री ने उत्तमकुमार को राजा की राजनीति, असाधारण उदारता और विद्वानों के आदर-सम्मान करने के गुणों की बातें कह सुनायी । सुनकर राजकुमार के निर्मल हृदय में राजा के प्रति बड़ी ही श्रद्धा उत्पन्न हुई ।

तेरहवाँ परिच्छेद

सर्प - दंश

एक सुन्दर वाटिका थी, जिसमें तरह-तरह के वृक्ष अपने पल्लव, पुष्प और फलरूपी समृद्धि से सुशोभित दिखाई पड़ते थे । पक्षी अपने मधुर कलरव से वाटिका की मनोहरता को और भी बढ़ा रहे थे । कहीं क्यारियों की अनुपम रचना मन को लुभाती थी । जहाँ-तहाँ भरे हुए पानी के कुण्ड वाटिका की शोभा को द्विगुणित कर रहे थे । उनमें पानी पीनेवाले पक्षी, मानों वृक्षों पर बैठकर अपने मधुर शब्दों से उनका आभार स्वीकार कर रहे थे । पुष्प तोड़ती हुई मालिनें मनवाच्छित पुष्पों को पाकर मन में मुस्कुरा रही थीं और साथ ही मधुर गीत भी गाती जाती थीं । एक ओर निर्मल जल की नाली बह रही थी । छायादार वृक्षों की शीतल छाया में बैठे हुए अनेक पशु-पक्षी उस निर्मल जल का पान कर अपनी प्यास बुझाते थे । कहीं नाली से जल के गिरने का शब्द सुनकर मयूर मेघ गर्ज्जन समझ, संभ्रम से आवाज करते हुए नाच रहे थे । कहीं चपलता प्रदर्शित करने वाले बन्दर वृक्ष शाखाओं को पकड़कर झूल रहे थे । आम्रवृक्ष की मंजरी

के स्वाद से उन्मत्त कोकिला पंचम स्वर से श्रोताओं के कानों को अत्यन्त आनन्द पहुँचा रही थी।

इसी पुष्पवाटिका में राजा नरवर्मा की पुत्री तिलोत्तमा अपनी सहेलियों के साथ बगीचे में टहलने के लिए आयी थी। वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य का निरीक्षण करती हूई राजकुमारी बगीचे में चारों ओर टहल रही थी। कभी किसी छायादार वृक्ष के नीचे खड़ी हो गयी, तो कही सब सहेलियों के साथ रासलीला में भिन्न-भिन्न प्रकार से गाने लग जाती थी। फव्वारे के पास आकर उसकी रचना को देख-देख कर वह विविध चेष्टाएँ करती थी। कभी वृक्षशाखाओं पर कूद फाँद करनेवाले बन्दरों का तमाशा देखकर मन में प्रसन्न होती थी। कभी कभी आम्रवृक्ष की सघन शाखाओं में बैठी हुई कोयल के मधुर स्वर को श्रवण कर उसके साथ अपने गले के स्वर का मिलान करती थी।

इस प्रकार मनोरंजन करती हुई राजपुत्री तिलोत्तमा आगे बढ़ी, वहाँ वह एक छायादार खीरनी के वृक्ष के नीचे पहुँची। उस वृक्ष के आस-पास नाना प्रकार के फूलों के वृक्ष थे। उन्हें देखकर राजकुमारी और उसकी सखियाँ आपस में बातचीत करने लगीं। "सखी ! देख, इस चमेली के पुष्प कैसे खिले हुए हैं ? मानों आकाश में तारे चमक रहे हों। इस मोगरे के पुष्पों की सुगन्ध कितनी मोहक है ? इस नागकेशर की बनावट कैसी अद्‌भुत है ? यह कनेर कैसी अच्छी लगती है - परन्तु सुगन्धरहित होने से ऐसा मालूम पड़ता है मानो वह लज्जित हो गयी है। ये जुही, गुलाब और कुन्द के फूल कैसे खिले हैं ? देखो देखो, ये भौंरे लालच में पड़कर मकरन्द में कैसे तल्लीन हो गये हैं ?"

इस तरह बातचीत कर चुकने पर सखियाँ तिलोत्तमा की आज्ञा से उन पुष्पों को तोड़ेने चली गयी और राजकुमारी उस वृक्ष के ही नीचे खड़ी रही। इसी समय वृक्ष की कोटर में से एक भयङ्कर साँप बाहिर निकला और उसने आकर चुपके से राजपुत्री के पैर में काट खाया। "बहिनो ! दौड़ो, मुझे साँप ने काट लिया।" इस प्रकार चिल्लाकर तिलोत्तमा बेसुध हो पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसकी आवाज सुनते

ही सब सहेलियाँ हक्की-वक्की सी दौड़ी आयी और राजकुमारी के आस-पास "खमा, खमा" कहती हुई इकट्ठी हो गयी । उनमें से एक सहेली दौड़ी हुई बागवान के पास आयी और उसे उसने दरबार में महाराजा को खबर देने दौड़ाया।

राक्षसकुमारी मदालसा के सहवास से तिलोत्तमा के मन में धर्म की वासना अधिक जागरित हो गयी थी । इसलिए सर्प के काटते ही उसने नवकार मंत्र का उच्चारण करना आरंभ कर दिया, और धर्म की शरण लेने लगी । उसकी सहेलियाँ राजकुमारी का मुँह देख-देखकर अश्रुधारा बरसाती हुई रोने लगीं ।

राजा नरवर्मा यह अशुभ समाचार सुनते ही अपने मुख्य-मुख्य मनुष्यों के साथ बगीचे में दौड़े हुए आये । उस खिरनी वृक्ष के नीचे पहुँच कर उन्होंने बेसुधपड़ी हुई राजकुमारी को अपनी गोद में लेकर कहा - "बेटी तुझे क्या हो गया ? शासनपति तेरी रक्षा करें ।" ऐसा कहकर वह उसे बुलाने की चेष्टा करने लगे परन्तु सर्प विष उसके सारे शरीर मे व्याप्त हो चुका था, इसलिए तिलोत्तमा कुछ भी नहीं बोल सकी । जब अपनी पुत्री के मुँह से कुछ भी उत्तर नहीं मिला, तब राजा अत्यंत शोकातुर हुआ और जोर जोर से डाढ़ें मार कर रोने लगा।

यह समाचार बिजली की तरह मोटपल्ली नगरी में फैल गया । सुनते ही राजमंत्री, सामंत, और अधिकारी तथा नगर वासी वहाँ दौड़कर आ पहुँचे । सती मदालसा भी सखी स्नेह से रोती कलपती हुई राजमाता के साथ वहाँ आयी । इस खबर से सारे नगर में हाहाकार मच गया।

राजमंत्री तथा नगर सेठ आदि ने आकर महाराजा को बहुत समझाया, परन्तु महाराजा का पुत्री प्रेम इतना प्रबल था कि राजा नरवर्मा अपने शोक को किसी भी तरह शान्त नहीं कर सका । अनन्तर मंत्रि आदि नगर जनों ने राजा को समझाकर, एक अच्छी पालकी मँगवाई और उसमें राजकुमारी के अचेत शरीर को रखकर दरबार में ले आये और वहाँ पर सर्प विष निवारण के लिए अनेक उपचार करने लगे।

सर्प विष दूर करने की औषधियाँ जानने वाले वैद्यों को बुलाया गया,

किन्तु राजकुमारी का जहर नहीं उतरा। अन्त में उन चतुर वैद्यों ने चिकित्सा कर के कहा कि, किसी - "गारुड़ी विद्या" के जानकार को बुलाया जाय तो राजकुमारी अच्छी हो सकती है।

चौदहवाँ परिच्छेद

उपकार का बदला

राजा नरवर्मा शोकाकुल बैठा है, उसके आस-पास मंत्री, सामंत और दूसरे राज कर्मचारी बैठे हुए राजा के शोक से दुःखी हो रहे हैं। राजकुमारी तिलोत्तमा के शरीर में सर्प विष फैलता जा रहा है, उसकी चेतन शक्ति लुप्त होती जा रही है। परंतु औषधियो के प्रयोग के कारण कुछ जबान खुली तब उस मरणासन्न तिलोत्तमा ने मन्द स्वर में अपने पिता से कहा - "पिताजी ! अब मैं इस संसार की यह छोटी सी मुसाफिरी करके परलोक में जाती हूँ। मेरे हृदय की वासनाएँ अपूर्ण है; परन्तु उन्हें पूर्ण समझकर मैं अपने हृदय में से उन्हें निकाल देती हूँ। और सब वासनाएँ मेरे चित्त से अलग हो गयी हैं, सिर्फ एक वासना मेरे हृदय में बनी रहती है, उसे यदि आप पूर्ण करने का वचन दे तो अन्त समय में मेरे मन को शान्ति प्राप्त हो।"

अपनी पुत्री के यह वचन श्रवण कर राजा नरवर्मा रोते हुए कहने लगे - "बेटी ! किसलिए तूं निराश होती है ! तेरी प्राण रक्षा के लिए मैंने अभी बहुत से उपाय किये हैं। तुझे जीवन प्रदान करने वाला कोई न कोई वीर पुरुष यहाँ निकल ही आयेगा। तेरे जीवन के लिए यह मेरा समृद्धि युक्त राज्य तथा मैं मर-मिट जाने के लिए तैयार हूँ। मैंने इस विषय का नगर में ढिंढोरा फिरवा दिया है। बेटी ! तूं इतनी मत घबरा। तुझे अच्छा करने वाला कोई न कोई नगर में अवश्य ही निकलेगा। तेरे हृदय में जो कुछ भी वासना अथवा आशायें हैं, वे सब धर्म के प्रभाव से सफल होंगी। धीरज रखकर पंचपरमेष्ठी का स्मरण कर, यह महामंत्र तेरे जीवन की रक्षा करेगा।" पिता के यह वचन सुनकर तिलोत्तमा ने पहिले से भी अधिक

मन्द स्वर में कहा – "पिताजी ! आप मेरे उपकारी पिता हो । आपने मेरे जीवन के लिए जो कुछ भी किया वह बहुत है । आपने जैसा अपना पितृ धर्म निभाया है वैसा निभाहने वाले इस संसार में कोई विरले ही पिता मिलेंगे । पूज्य पिताजी ! आप मुझे हिम्मत दे रहे हैं, परन्तु मुझ में वह हिम्मत्त अब आती नहीं । साँप का भयङ्कर और प्राण नाशक विष मेरे अंग प्रत्यंग में पहुँच चुका है । ऐसे उग्र विष को उतारने वाला महा पुरुष कहाँ मिलेगा ? अब मैंने अपने जीवन की आशा छोड़ दी है इसलिए पिताजी ! आप मेरी एक इच्छा पूरी करने का वचन दो, जिससे मैं प्रसन्न होकर इस अन्त समय में अपना जीवन सफल करने के लिए पंचपरमेष्ठी का स्मरण कर सकूँ ?"

महाराजा ने रोते-रोते कहा – "बेटी ! शान्ति धारण कर । शासन देवता तेरी रक्षा करेंगे । तेरी क्या इच्छा है ? यह शरीर, राज्य इत्यादि सब तेरा ही है । तेरे जीवन के लिए यह सब कुछ अर्पण कर सकता हूँ ।" इस बार राजपुत्री ने बहुत ही अस्पष्ट और धीमी आवाज से कहा – "पिताजी ! मेरी प्रिय बहिन मदालसा की आप रक्षा करना, और उसे मेरे समान समजकर उसकी सब अभिलषाएँ पूर्ण करना । यही मेरी एक मात्र अन्तिम इच्छा है, मेरा वियोग उसे दुःखी न कर सके ऐसा उपाय करना, और उसके सब मनोरथ पूरे करना ।" यों कहते-कहते राजबाला की बोली बन्द हो गयी ? उसकी जबान पर जहर का असर अधिक हो गया । परन्तु उस पवित्र रमणी के मुख से नवकार मंत्र का स्पष्ट उच्चारण हो रहा था ।

पुत्री की ऐसी स्थिति देखकर नरवर्मा और भी अधिक घबरा गया । उसके दोनों नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी । एक ओर मदालसा सुबुक सुबुक कर रोने लगी । सारे अन्तःपुर में शोक सागर उमड़ पड़ा । सब के नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगी । इधर मदालसा थोडी देर में अपने कमरे में चली गयी । इसी समय एक राजसेवक ने दौड़ते हुए आकर रोते विलपते राजा नरवर्मा को प्रणाम करके कहा – "महाराज ! कोई एक राजकुमार द्वार पर आकर खड़े हैं और कहते हैं कि "राजकुमारी कहाँ हैं ? उसे निर्विष कर सकता हूँ । यह सुनते ही, मानो राजा

नरवर्मा ने नवजीवन प्राप्त किया हो या अमृत से सिंचित हुआ हो । तत्काल वह सावधान होकर बोला - "हाँ जाओ, उस राजकुमार को जल्दी यहां लेकर आओ ।" राजा की आज्ञा पाते ही मुख्य मंत्री स्वयम् उठकर द्वार पर पहुँचा और उस राजकुमार को महाराजा नरवर्मा के पास ले आया । उसे देखते ही राजा ने पहिचान लिया । वह उत्तमकुमार था । महाराजा ने राजकुमारी के लिए बनवाये हुए महल में उससे परिचय प्राप्त किया था । राजा उसकी शिल्प विद्या में निपुणता देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ था ।

उत्तमकुमार ने महाराज को आते ही प्रणाम किया । उसे देखकर राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ और कहने लगा - "राजकुमार ! राजपुत्री के राज महल-निर्माता विश्वकर्मा आपही तो हैं । आपमें सब प्रकार की निपुणता देखकर मैं बहुत ही सन्तुष्ट हूँ । मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप मेरी इस पुत्री को अवश्य ही जीवन दान देंगे । महानुभाव ! कृपा करके इस कन्या को जीवन दान दीजिए । इस राजबाला को जीवन दान प्रदान करने से आपका हमारे राज परिवार पर बड़ा ही उपकार होगा । यद्यपि मैं आप के इस महान-उपकार का बदला किसी तरह भी नहीं चुका सकूँगा तथापि मुझसे हो सकेगी उतनी कृतज्ञता प्रकट करने में मैं कदापि नहीं चूकूँगा । अब आप शीघ्रही अपने किसी प्रयोग से राजकन्या को जीवित कीजिए ।" देर करने का मौका नही है ।"

राजा के मुख से ऐसी बातें सुन कर उत्तमकुमार उस राजकन्या के पास आया और उसने तुरन्त ही गारुडी मंत्र का महाप्रयोग आरंभ किया । थोड़ी ही देर में तिलोत्तमा निर्विष होकर उठ बैठी, और उसने सब से पहिले अपने उपकारी कुमार को प्रणाम किया; बाद में पिता-माता इत्यादि को क्रमशः प्रणाम किया । राज-पुत्री को होश में देखकर उसका पिता अत्यन्त प्रसन्न हुआ । उसकी आँखों के दुःख भरे आँसू, आनन्द के रूप में बदल गये । आनन्द और हर्ष के रंग में रँगे हुए राजा नरवर्मा ने अपनी प्रिय पुत्री को हृदय से लगा लिया । इसके बाद उसने प्रेमाश्रु गिराते हुए उत्तमकुमार का अन्तःकरण से अत्यन्त उपकार माना । चारों

ओर राज परिवार में आनन्द मंगल होने लगा और प्रजा में भी घर-घर उत्सव मनाया जाने लगा ? अपनी बेटी को निर्विष हुई देखकर प्रसन्नता पूर्वक राजा नरवर्मा ने राजकुमार से कहा - "हे उपकारी, नरवर ! यह राज्य और राज कन्या ग्रहण करके मुजे कृतार्थ कीजिए । राजपुत्री को जीवनदान देने वाले महानुभाव ! आप इस कन्या तथा मेरे राज्य के स्वामी बनकर मुझे आपके ऋण से मुक्त कीजिए । आपकी पहली भेट से ही आपकी कुलीनता तथा निपुणता की गहरी छाप मेरे चित्तपर लग चुकी थी अबकी बार आपके इस उपकार ने तो और भी वृद्धि की है। राजपुत्र ! आपके इस उपकार का बदला किसी दूसरी तरह से मैं दे सकूं यह असम्भव है । बुद्धिमान मनुष्य को उपकार का बदला जरूर देना चाहिए । जो मनुष्य किसी के उपकार का बदला नहीं देता, वह कृतघ्नी गिना जाता है। वह अपने मानव जीवन को दूषित कर देता है। कृतज्ञता सबसे बड़ा गुण है - कुत्ते जैसे निकृष्ट प्राणी में भी यह गुण होता है । पाला हुआ कुत्ता अपने पालने वाले मालिक के घर की और शरीर की रात-दिन रक्षा करता है। इतना ही नहीं बल्कि वह अपने मालिक के लिए प्राण तक देने को तैयार रहता है। रणभूमि में मूर्च्छित अपने सवार को छोड़कर असली जातिवान घोड़ा कभी भी नहीं भागता । इस प्रकार पशुपक्षी कीट पतंगादि भी कृतज्ञता के गुण से विभूषित हैं तो जीवो में प्रथम मानेजाने वाला बुद्धिमान मनुष्य कृतज्ञता के इस उत्तम गुण को भूल जाय तो वास्तव में वह कृतघ्नी माना जाता है । कृतघ्नी पुरुषों के मलिन जीवन को नीतिकारों ने अत्यन्त घृणित माना है। अतः हे प्रिय राजकुमार ! मैं कृतघ्नता के महापाप से बहुत डरता हूँ और इसीलिए यह राज्य तथा राज कन्या आपको देकर मेरे जीवन के शेष दिनों को अच्छे मार्ग में लगाने की इच्छा करता हूँ। वृद्धावस्था में धर्म तथा आत्म साधना करने वाले पुरुषों का जीवन कृतार्थ माना जाता है, ऐसे कई उदाहरण जैन इतिहास में मिलते हैं।"

राजा ने तिलोत्तमा की शादि उत्तमकुमार से करने का तय कर इस खुशी में कैदियों को छोड़ने आदि कई कार्य किये । इसमें कुबेरदत्त भी छूट गया ।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

परस्पर प्रेम की उत्पत्ति

राज भवन के एकान्त स्थान में पवित्र हृदया मदालसा खिन्न मन से बैठी हुई थी। उसके ललाट पर चिंता की त्यौरी पड़ी हुई थी। बार-बार निश्वास छोड़ती हुई, तथा आँखों से आँसू बहाती हुई वह हृदय के दुःख से अत्यन्त दुःखी थी। उसका चिंताकुल हृदय-मंदिर शोक के अन्धकार से आच्छादित हो गया था।

इसी समय उसकी वह वृद्धा दासी उसके पास आयी। अपनी मालकिन को शोकातुर देख उसका हृदय भी चिन्तित हो गया। उसने मधुर और मन्द स्वर में कहा - "राजपुत्री ! किसलिए इतना शोक करती हो ? आज तक तो तुम आनन्द में रहा करती थीं, परन्तु आज तुम अचानक इतने शोक में क्यों पड़ी हो ? तुम्हारे समान सुज्ञ एवम् शिक्षित राजबाला ही जब मोह वश होकर इस प्रकार शोक सागर में डूब जायगी तो फिर दूसरी साधारण स्त्री की तो बात ही क्या है ? तुम गुणी और समझदार हो, तुम्हारे हृदय पर इस प्रकार चिन्ता लगी रहे, यह तो सर्वथा अनुचित है।"

उस बुढ़िया के यह वचन सुनकर मदालसा ने धीरे से कहा - "मुझे आज मेरे प्राण पति का स्मरण हो गया है। मेरी बहिन तिलोत्तमा के वैवाहिक कार्यों को देखकर मेरी मनोवृत्ति अपने पतिदेव के स्मरण में लग गयी। आज बहुत दिन बीत गये, परन्तु मुझे मेरे प्राणनाथ का कुछ भी समाचार नहीं मिला। मैं आज तक अपनी आशारूपी बेली को हरी बनाये हुए थी, परन्तु यह आशालता अभी तक फलवती नहीं हुई ! अब मेरी आशा दिन प्रति दिन शिथिल होती जा रही है और मेरे हृदय में अपने पति के लिए अनेक शंकाएँ उत्पन्न होती हैं। अगाधसमुद्र में पड़कर क्या मेरे पति अब जीवित रहे होंगे ? यह बातें मुझे असम्भव सी मालूम होती हैं। अब मुझे अपने जीवन पर प्रेम नहीं है। पति की ओर से निराश होकर, मैं अपने जीवन को कैसे धारण कर सकती हूँ। जब कभी मैं जीवन के अंत करने

का विचार करती हूँ तभी आर्हत धर्म के नियम मेरे हृदय में आ जाते हैं। काष्ठ भक्षण कर के आत्महत्या करना आर्हत धर्म के विरुद्ध है। इसलिए अब मैंने निश्चय किया है कि इस सांसारिक जीवन से मुक्त होकर और संसार का त्याग करके चारित्र जीवन में प्रवेश करना चाहिए। मेरे पिता तुल्य महाराजा नरवर्मा की कृपा का मैंने यहाँ खूब लाभ उठाया है। दीन मनुष्यों को दान देकर, और अशरण को शरण देकर मैंने अपने आचरणों को उपकार धर्म में प्रवृत्त किया है। सात क्षेत्रों में द्रव्य व्यय करके, मैंने मेरा गृहस्थ धर्म यथाशक्ति कृतार्थ किया है। इसी तरह हृदय और विचारों की पवित्रता के निमित्त, जिन पूजा और जिनाराधन भी किया है। अब मेरी इच्छा चारित्र ग्रहण कर आत्मसाधना करने की है। अब मैं इस प्रवृत्तिमार्ग से निवृत्ति मार्ग की तरफ जाने के लिए व्याकुल हूँ। इस संसार के असार स्वरूप से मुझे अब कुछ घृणा सी उत्पन्न हो गयी है।"

मदालसा के यह वचन श्रवण कर वह वृद्धा दासी कहने लगी - "राजकुमारी! तुम ऐसी चिंता मत करो। मैंने आज ही एक ऐसी बात सुनी है, जिससे आपकी मुरझाई हुई आशालता सींची जा सकती है. सावधान होकर सुनो। तुम्हारी प्रिय बहिन तिलोत्तमा का जिस पुरुष से अभी वैवाहिक सम्बन्ध हुआ है, वह कोई विदेशी पुरुष है, और उसकी प्रशंसा खूब हो रही है। उसका ज्ञान तथा कला-कौशल अलौकिक सुना गया है। कहीं वह वीर पुरुष तुम्हारे पति तो न हों? आयुष्य बल से दुस्तर समुद्र को तैरकर शायद वे यहाँ आ गये हों? कर्म की गति बड़ी ही विचित्र होती है। कर्म-विधि से अनहोनी घटनाएँ भी हो जाती हैं। यदि आपकी इच्छा तथा आज्ञा होतो मैं उस वीर पुरुष को स्वयं जाकर अपनी आँखो देख आऊँ?"

वृद्धा दासी के ये वचन सुनकर मदालसा की आशालता पुनः कुछ अंकुरित होने लगी। दासी की बातें उसे असम्भव नहीं मालूम हुई। कर्म की विचित्रता पर विश्वास करनेवाली मदालसा यह बातें सुनकर अपने अव्यवस्थित हृदय में संकल्प-विकल्प करने लगी। थोड़ी देर विचारने के बाद

उस वृद्धा स्त्री को उसने वहाँ जाने की आज्ञा दी । बुढ़िया प्रसन्नता पूर्वक उठ खड़ी हुई और अपनी स्वामिनी का कार्य सिद्ध करने के लिए राजपुत्री तिलोत्तमा के महल की ओर चलदी ।

वह वृद्धा उस महल से भली-भाँति परिचित थी, इसलिए वह वहाँ बिना किसी रोक-टोक के आ जा सकती थी । उसने तिलोत्तमा के महल में जाकर उस सुन्दर राजकुमार को देखा । राजकुमार की आकृति उसके ध्यान में तो आई परन्तु वह उसे देखकर यह निश्चय नहीं कर सकी कि वह उत्तमकुमार ही है, उसके हृदय में कुछ शंका रह ही गयी ।

उत्तमकुमार को देखकर वृद्धा अपनी मालकिन मदालसा के पास आयी और पुलकित होकर कहने लगी; "बाईसाहेब ! यद्यपि राजकुमारी तिलोत्तमा का पति तुम्हारे पति उत्तमकुमार से बहुत कुछ मिलता जुलता है । तथापि में निश्चयपूर्वक ऐसा नहीं कह सकती कि वह उत्तमकुमार ही है । मुझे वह उत्तमकुमार के समान ही दिखाई पड़ता है । आकृति तो उसकी वैसी ही है । पर उसकी आकृति में थोड़ा फर्क है, किन्तु वह स्वाभाविक नहीं, कृत्रिम है ।"

वृद्धा के वचन सुनते ही मदालसा का हृदय भर आया । "शायद वह मेरा ही पति हो ।" ऐसा एक अनिश्चित विचार उसके हृदय में चक्कर काटने लगा । उसके हृदय में पति प्रेम की उत्ताल तरंगे उठने लगीं । थोड़ी देर बाद उस सती स्त्री ने अपना अनिश्चित विचार बदल दिया और तुरंत ही उसने अपने मन को समझाया - "अरे पापीमन ! मुझे भुलाकर, बिना पूर्ण निश्चय किये, उस अज्ञात पुरुष पर अपना प्रेम क्यों प्रकट किया ? तूं मेरे पवित्र चरित्र को कलंकित करने के लिए तैयार हो गया, परन्तु मैं अपने पूर्व पुण्य के बल से सावधान हो गयी हूँ । यदि इन्द्र, देव, गन्धर्व, चक्रवर्ती, अर्द्ध चक्रवर्ती, सार्वभौम या महाराजा भी हो, तो भी उन्हें देखकर मेरे विचार में विकार उत्पन्न नहीं होने पाया था, किन्तु अरे चंचल मन ! तूंने तेरा स्वभाव दिखा ही दिया । और तूं रागी प्रेमी बनने के लिए तैयार हो गया । परन्तु इस समय मुझे, मेरे सम्यक्त्व सहित सती धर्म ने बचाया है । तेरे मलिन फन्दे

में से मेरे धार्मिक विचारों ने मेरा उद्धार किया है । रे अनाचारी, चंचल मन ! पहिले तो तुझे यह विचार करना चाहिए कि तेरा ऐसा भाग्य ही कहाँ है जो तेरे प्राण पति का पुनः मिलाप हो । यदि तेरा सद् भाग्य ही होता तो उस वीरनर को समुद्र में क्यों धकेला जाता । मिला हुआ चिंतामणि रत्न फिर क्यों खो जाता ?"

इस तरह अपने मन को उपालम्भ देकर मदालसा फिर निर्मोही तथा राग शून्य हो नवकार मंत्र जपने लगी । उसकी रागी मन में फिर धर्म भावना जागरित हो गयी । सम्यक्त्व धर्म की शुद्ध छाया उसकी मनोवृत्ति पर छा गयी । मदालसा की ऐसी शुद्ध वृत्ति देख कर वह बुढ़िया भी उसी के विचारों का अनुमोदन करने लगी ।

इधर नरवीर उत्तमकुमार अपनी नवीन प्रिया तिलोत्तमा के साथ रहते हुए, नवीन आनन्द का अनुभव कर रहा था । जब मदालसा की वह वृद्धा दासी राजकुमार के महलों में आकर इस प्रकार चुपचाप तुरन्त ही लौट गयी थी, तब चतुर कुमार ने अपनी प्रिया से पूछा - "प्रिये ! यह बुढ़िया यहाँ आकर पुनः तत्काल बिना कुछ कहे सुने वापस लौट गयी, वह कौन थी ?" पति के इस प्रश्न को सुनकर तिलोत्तमा ने जवाब दिया - "जीवनाधार ! मदालसा नामक एक विदेशी स्त्री यहाँ आयी है, वह रूप और द्रव्य में भर पूर है । उसे सब तरह से योग्य समझकर मेरे पिता ने अपने यहाँ आश्रय दिया है । वह मेरे अंतःपुर के एक भाग में रहती है । यह वृद्धा स्त्री मेरी प्यारी सखी मदालसा की दासी है ।"

राजकुमारी के मुँह से "मदालसा" नाम सुनते ही राजकुमार आनन्द और आश्चर्य के समुद्र में गोते खाने लगा । "वह मेरी प्यारी मदालसा ही होगी" ऐसा निश्चय होते ही उसके मनोमंदिर में उसके प्रेम की पवित्र मूर्ति फिर अङ्कित हो गयी । मदालसा का पूर्व प्रेम उसके हृदय में पूर्ण रूपसे जागरित हो उठा । राजकुमार मन-ही-मन सोचने लगा - "अरे कर्म ! तेरी कैसी विचित्र गति है ? क्या मेरी प्राण प्रिया महासागर के प्रबल प्रवाह में से बचकर यहाँ आ सकती हैं ? क्या मेरे जीवन की वह प्यारी प्रिया पुनः मुझे मिल सकेगी ? यह सर्वथा असम्भव है । परन्तु कर्म की सत्ता क्या नहीं कर सकती ? जगत के जीवन मार्ग में कर्म का

प्रचण्ड ताण्डव-नृत्य जो काम करता है, वह किसी दूसरे से नहीं हो सकता।"

यह सोचते उसके पवित्र हृदय में प्रेम जागरित हो उठा। शरीर रोमांचित हो गया। मुख मुद्रापर विकार की रेखा झलकने लगी। प्रत्येक अंग में स्नेह का रंग व्याप्त हो गया। उसके सामने न होते हुए भी वह उस रमणी को अपने सामने प्रत्यक्षवत् अनुभव करने लगा।

इस प्रकार एक ओर मदालसा और दूसरी ओर उत्तमकुमार अपने-अपने शंकित तथा अनिश्चित प्रेम के सुन्दर रस का मन-ही-मन अनुभव करने लगे। वे परस्पर प्रेम मग्न हो गये, किन्तु यह प्रेम, संदेहात्मक होने के कारण उनके मन को शंका और संकल्प-विकल्प के जटिल जाल में झोंके दे रहा था लेकिन शुद्ध प्रेम की सच्ची प्रतिमा होने के कारण सहज स्वभाव से ही संदेह होने पर भी निःशंक धर्म को धारण करके उनके हृदय में विश्वास उत्पन्न करती थी। यद्यपि सती मदालसा ने अपने मन को उलाहना दिया था, तथापि आशा के बलपर उसके हृदय में सत्य की छाप पड़ी और इसीसे वह "शायद यह बात सत्य हो" ऐसा भी विचार करती जाती थी। उसी तरह राजकुमार भी अपने हृदय को सँभालकर आशा पर झूल रहा था। इस प्रकार उन दोनों वियोगी दम्पति के शुद्ध हृदय में अलग अलग ढंग से प्रेम की जागृति हुई।

सोलहवाँ परिच्छेद

सहस्त्र कला

एक सुन्दर बाला अपने मनोहर महल में बैठी हुई थी। उसकी अवस्था मुग्धा और तारुण्य के बीच की कही जा सकती है। उसके शरीर पर अनुपम सौन्दर्य शोभा दे रहा था। उसका मुखचन्द्र पूर्णिमा के चन्द्रमा को भी लज्जित करता था। मुखचन्द्र में मृदुहास्य अपूर्व मननोहक बन गया था। हास्य के समय उसके दाँतो की उज्ज्वल किरणें उसके मुख-तेज को और भी प्रकाशित करने

में सहायक हो रही थीं।

इस रमणी का महल बड़ा ही सुन्दर और भड़कीला-चमकीला था। उसमें ऊँचे दर्जे की पच्चीकारी का काम किया गया था। उसके आस-पास और भी कई मनोहर विशाल महल थे। उनमें उस रमणी का धनाढ्य कुटुम्ब रहता था। महल के पास ही हाथी, घोड़े, गाड़ी, पालकी, म्याना वगैरह के लिए सुन्दर मकान बने हुए थे। प्रत्येक स्थान पर राज वैभव को लजाने वाले ठाठ-बाठ के दृश्य दिखाई देते थे। उसकी गृहलक्ष्मी राज्यलक्ष्मी का मुकाबिला करती थी। विशाल आँगन में हजारों दास-दासी नये-नये वस्त्र पहिने इधर उधर फिर रहे थे।

पाठक ! आपको इस सुन्दरी का पूरा वृतान्त जानने की उत्सुकता होगी। आपकी यह उत्सुकता शांत करना, लेखक का प्रथम कर्तव्य है। इस सुन्दरी का नाम सहस्त्रकला है। यह "यथा नाम तथा गुणा" है। सहस्त्र कलाओं की ज्ञाता होने के कारण इसका यह नाम सार्थक कहा जा सकता है। इसके पिता का नाम महेश्वरदत्त है। महेश्वरदत्त मोटपल्ली नगर का एक धनाढ्य वणिक है। राजा नरवर्मा के समृद्ध राज्य में वह बहुत ही प्रतिष्ठित धनी सेठ माना जाता है। उसने व्यापार के द्वारा अत्यन्त ऐश्वर्य प्राप्त किया है। उसकी पूँजी छप्पन करोड़ मोहरों की गिनी जाती है। बड़े-बड़े पाँच सौ जहाज उसके अधिकार में हैं। पाँच सौ गाडियाँ, पाँच सौ दुकानें और पाँच सौ गोदाम कोठियों का वह मालिक है। उसके वैभव के अनुसार हाथी, घोड़े , पालकी, सेवक और योद्धा आदि मौजूद हैं।

इस धन सम्पन्न सेठ महेश्वरदत्त के एक मात्र सन्तान यह सहस्त्रकला ही है। गुण, विनय तथा रूप सम्पन्ना यह सहस्त्रकला उस धनपति सेठ की प्राणों से भी प्यारी बेटी है। पुत्री वत्सल पिता ने इस बाला को उत्तम शिक्षा देकर एक विदुषी बालश्राविका बनायी थी। ज्ञान एवम् कला सम्पन्न यह बालिका अपने पिता के यहाँ रहती हुई ज्ञान तथा कला के आनन्द का पूर्ण रीति से अनुभव करती थी। सहस्त्रकला जब बड़ी हुई तब उसके पिता को उसके योग्य पति ढूँढने की महान चिंता उत्पन्न हुई। पुत्री के अनुरूप गुणी तथा योग्यवर ढूँढने की चिंत ा में वह

रातदिन निमग्न रहने लगा । उसने बहुत से उपाय भी किये किन्तु अभी तक सफलता नहीं मिली !!

वही, श्रावक बाला सहस्त्रकला अपने महल में बैठी हुई है । अपने भविष्य जीवन के विषय में वह नये-नये संकल्प-विकल्प कर रही है । इसी समय एक दासी ने हाजिर हो सुन्दरी को प्रणाम किया और कहा - "बाईसाहिबा ! आपको सेठ साहिब बुला रहे हैं ।" यह सुनते ही वह खड़ी हो गयी ओर पास के महल में जहाँ उसके पिता महेश्वर दत्त बैठे हुए थे, आकर विनयपूर्वक प्रणाम किया । पिता ने पुत्री को प्रेम से अपने पास बिठायी ।

वहाँ पहिले ही से एक विद्वान ज्योतिषी बैठा था । वह अपने निमित्त-ज्ञान के बल से भूत तथा भविष्य अच्छी तरह कह सकता था । उस ज्योतिषी को दिखाने के लिए ही सहस्त्रकला वहाँ बुलायी गयी थी । पिता के कहने पर सहस्त्रकला ने उस ज्योतिषी के चरण स्पर्श किये । शान्तमूर्ति ज्योतिषी ने उसे आशीर्वाद दिया । सहस्त्रकला का दैवी सौन्दर्य देखकर वह हृदय में आश्चर्य-चकित हो गया । कुछ देर बाद अपने गणित बल से तथा कन्या के सामुद्रिक लक्षणों को देखकर कहने लगा - "सेठजी ! इस कन्या की आकृति से मालूम होता है कि आज से एक महीने के अन्दर इसे योग्य वर मिल जायगा । आप निःशंक होकर विवाह की तैयारियाँ कीजिए ।"

ज्योतिषी महाराज के मुख से ऐसी बात सुनकर सेठ महेश्वरदत्त बहुत ही प्रसन्न हुआ । चिंता दूर हो गयी । उसके हृदय में आनन्दामृत की अविरल धारा बहने लगी । उसने ज्योतिषी को अच्छी भेट दी - वह भी प्रसन्न होकर, सेठजी की आज्ञा ले आशीर्वाद दे, अपने स्थान पर चला गया । यद्यपि सहस्त्रकला अपने विवाह की बात सुनकर मन में बड़ी ही प्रसन्न हुई तथापि ऊपर से लज्जा प्रदर्शित करती थी । वह अपने पिता से आज्ञा लेकर अपने महल में वापस आ गयी । उसके पास उसकी समान उम्रवाली सहेलियाँ आकर विवाह की बातचीत चलाकर हँसी दिल्लगी करने लगीं ।

ज्योतिषी की बातों पर विश्वास कर, महेश्वरदत्त ने तत्काल ही सहस्त्रकला के विवाह की तैयारियाँ करना आरम्भ कर दीं । विवाह की निमंत्रण पत्रिकाएँ लिख-लिखकर अपने इष्ट मित्रों को बुलाना आरम्भ कर दिया । विवाह के लिए विशाल और मनोहर मंडप तैयार करने के लिए कारीगरों को लगा दिया । विविधभाँति के पक्वान्न तथा मिष्टान्न तैयार करने के लिए अच्छे-अच्छे चतुर रसोइयों को बुलाया । माँगलिक बाजों की ध्वनि से तथा सुहागिन स्त्रियों के मधुर मंगल गान से महेश्वर दत्त का आँगन गूँज उठा । इस प्रकार सहस्त्रकला के विवाहोत्सव की सब तैयारियाँ होने लगीं - और यह बात सारे नगर में हवा की तरह फैल गयी।

जब यह बात महाराजा नरवर्मा ने सुनी तो वह आश्चर्य में पड़कर विचार करने लगा - "अरे ! महेश्वरदत्त जैसे समझदार और चतुर सेठ ने यह क्या किया ? अभी वर का तो ठिकाना ही नहीं, और उसने विवाहकार्य शुरू भी कर दिया । ऐसी भूल तो कोई भी समझदार मनुष्य कदापि नहीं करेगा । इसमें अवश्य ही कुछ भेद होना चाहिए । दूरदर्शी सेठ महेश्वरदत्त ऐसी ना समझी का काम करे यह बिलकुल असंभव है ।" इसी तरह की चर्चा उस नगर में भी जनता के द्वारा जहाँ-तहाँ चल रही थी । लोग इस विषय में तरह-तरह की बातें कहते-सुनते थे ।

नगर सेठ की यह बात सुनकर राजा नरवर्मा आश्चर्य कर ही रहे थे कि इतने ही में एक राजसेवक ने आकर कहा कि - "स्वामिन् ! नगर में ऐसी बातें सुनी जाती है कि सेठ महेश्वरदत्त ने गुप्त रूप से अपनी पुत्री के लिए योग्य वर की तजवीज कर ली है और उसने अपने मन में यह भी निश्चय किया है कि अपनी पुत्री सहस्त्रकला के विवाह कार्य से निपटकर, अपनी समस्त स्थावर जंगम सम्पत्ति की मालकिन सहस्त्रकला को एवं उसके पति को बना, स्वयं दीक्षा ले आत्मसाधना करेगा ।" राज सेवक के यह वचन सुनकर राजा नरवर्मा आनन्द मग्न हो गया । उसके मन में भी पवित्र भावना प्रकट हुई । राजा ने अपने हृदय में विचार किया कि - "धन्य ! महेश्वरदत्त कें कैसे पवित्र विचार है ? इस राज्य वैभव के समान

अपनी सम्पत्ति को त्याग कर दीक्षा ग्रहण करने के लिए तैयार है । इस सद्गुणी सेठ को सहस्त्रशः धन्यवाद है । राज-लक्ष्मी का कीड़ा बनकर मोह मग्न रहनेवाले मुझ जैसे मनुष्य से यह सेठ सौ गुणा श्रेष्ठ है । जैन शासन देवता ! कृपाकर के मेरी वृत्ति को भी इसी तरह पुण्य के पवित्र मार्ग की ओर प्रेरित कीजिए।''

इस प्रकार विचार करते-करते राजा नरवर्मा उस समय उत्तम भावनाओं का भावुक और वैराग्य-धर्म का प्रभावक बन गया । उसकी मनोवृत्ति तात्त्विक वासना से तृप्त होकर उच्च विचारों में तल्लीन हो गयी । उसके शुद्ध अंत:करण में तात्त्विक विचारों का ताँतासा बँध गया । इसी कारण वह आत्मिक बल का पोषक तथा कर्म-पंक का शोषक हुआ।

सत्रहवाँ परिच्छेद

तिलोत्तमा की चिन्ता

एक गगन चुम्बी सुन्दर महल में बैठी हुई तिलोत्तमा, सिर पर हाथ लगाये चिंता कर रही थी । बार बार नि:श्वास छोड़कर अपने कोमल होठों को अत्यन्त ग्लानि पहुँचा रही थी । चिता के समान, चिंता से उसका कोमल हृदय जला हुआ था । वह सचेत होते हुए भी जड़वत् और सखी सहेलियों सहित होने पर भी शून्यसी दिखाई पड़ती थी।

इसी समय एक दासी, जो उसके साथ समान वर्ताव रखने वाली थी वह वहाँ आ पहुँची । अपनी स्वामिनी को चिंतातुर देख वह दासी भी चिन्तित होकर कहने लगी - ''राजकुमारी ! किस विषय की चिंता कर रही हो ? महाराजा नरवर्मा ने योग्यपति से तुम्हारा विवाह करके तुम्हारी सब चिंताएँ दूर कर दी हैं । विवाह हो जाने पर पति-गृह जाने वाली कन्या को पितृगृह का वियोग होता है और अपने माता-पिता कुटुम्बी लोगों से अलग होना पड़ता है । ऐसा अवसर अभी तुम्हें नहीं

आया है। तुम्हारे पुत्री वत्सल पिता ने ऐसा अच्छा काम किया है कि, तुम विवाहित होने पर भी अभी पिता के ही धन ऐश्वर्य का उपयोग कर रही हो। बाल क्रीड़ा की भूमि का आनन्द, तुम युवावस्था में भी उठा रही हो। इतना सब कुछ होने पर भी तुम्हारा मुख चिंता की मलिन छाया से आच्छादित क्यों हो रहा है ? मन्द मुस्कान की किरणों से प्रकाशित तुम्हारा मुख चन्द्र, चिन्ता रूपी राहु से ग्रस्त देख कर मेरे मन में अत्यंत खेद होता है।"

उस दासी के यह वचन श्रवण कर तिलोत्तमा ने मन्द स्वर से कहा :- "सखि ! जिस सुख के लिए तूं मेरे भाग्य की प्रशंसा करती है, वह अब दुर्दैव से नहीं सहा जाता; ऐसा जान पड़ता है। पितृगृह में रहकर पतिगृह के सुखों का अनुभव करने वाला मेरा यह भाग्य अब अस्थिर हो चला, ऐसा मुझे भास होता है। दासी ने उत्सुकता से पूछा - "ऐसा भास होने का क्या कारण है ? जल्दी कहो।"

तिलोत्तमा कहने लगी - "सखि ! आज मेरे प्राणनाथ प्रातः काल उठ कर, जिन पूजा करने गये थे। अब सायङ्काल होने आया किन्तु वे अभी तक आये ही नहीं हैं। वहाँ भी तलास करवायी परन्तु उनका कुछ भी पता नहीं लगा। वे कहाँ गये होंगे ! इस बात की चिंता मुझे हो रही है। आज मेरे सुख का प्रकाश अस्त होना चाहता है। मैं आज उपवासी होकर पति की प्रतीक्षा कर रही हूँ। मेरे प्राण नाथ की क्या दशा हुई होगी ? जिन पूजा के पवित्र कार्य में लगे हुए मनुष्य को किसी प्रकार की विघ्न बाधा होना असंभव सा है। शुभ कार्य में तत्पर रहने वाले और धर्म-ध्यान करने वाले प्राणी का अनिष्ट कदापि नहीं होता। ऐसे मनुष्य अन्तराय के महासागर से भी बच जाते हैं। सखि ! यह क्यों हुआ ? कुछ समझ में ही नहीं आता। इष्ट वस्तु की उपासना में अनिष्ट चिंतन करना अनुचित है। परन्तु मेरा यह नारी-हृदय ऐसी अनुचित बातें सोचे बिना नहीं रहता।"

दासी ने कहा - "राजकुमारी ! यह खबर महाराज को देनी चाहिए। वह अपनी राजकीय शक्ति द्वारा तुम्हारे पति का पता लगा लेंगे - जिससे तुम्हारे हृदय की चिन्ता दूर हो जायगी।"

राजकुमारी कहने लगी : - "सखि ! यह भी किया जा चुका है। महाराज ने यह खबर सुनते ही राजकुमार की खोज बड़े जोरों से आरम्भ कर दी है - उसमें उन्हें सामान्य सफलता भी मिली है । सच्ची बात जानने के लिए मैंने भी एक दासी को भेजी है।"

इस प्रकार तिलोत्तमा और वह दासी आपस में बातचीत कर ही रही थीं कि वह भेजी हुई दासी दौडती हुई वापस लौटी । उसने कहा - "बाई सहिबा ! मेरे जाने के पहिले ही महाराजा साहिब को खबर हो गयी थी कि, - "उत्तमकुमार जिनालय में पूजा करने गये थे, किन्तु वे वहाँ से न जाने कहाँ चले गये, इसलिए राजपुत्री तिलोत्तमा अत्यन्त दुःखी है ।" इस खबर को सुनते ही उन्होंने अपने मंत्रियो को बुलाकर उनको ढूँढने के लिए चारों ओर इधर-उधर दौड़ाये है । यह बात नगर में फैल जाने से कई राजभक्त भी उत्तमकुमार की खोज में प्रयत्न शील है । नगर के हरेक प्रसिद्ध तथा गुप्तस्थानों को देख लिया गया, परन्तु उत्तमकुमार का पता कहीं भी नहीं लगा । इसलिए महाराजा, महाराणी मित्रवर्ग, तथा प्रजाजन अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं ।"

दासी के यह वचन सुनकर, राजकुमारी की चिंता और भी अधिक बढ़ गयी । राजपुत्री के हृदय में शोकानल की प्रचण्ड ज्वाला धधक उठी । वह थोड़ी देर बाद मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर धड़ाम से गिर पड़ी । दासियों ने शीतोपचार द्वारा तिलोत्तमा को बड़ी कठिनता से ज्यों-त्यों करके होश कराया ।

अठारहवाँ परिच्छेद

विष प्रयोग

एक अत्यन्त सुन्दर वाटिका है, जो विविध भाँति के पुष्प वृक्षों से सुशोभित है। शीतल मन्द, और सुगंधित पवन उसमें चारों ओर बह रहा है। उस वाटिका में भ्रमण करने वाले मनुष्य, इस मधुर और सुख स्पर्श वायु का आनन्द लेते हुए हृदय में अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं। कोयल, मयूर, मैना और तीतर अपने मधुर कंठ से इस वाटिका को संगीतमय बना रहे हैं। वाटिका के बीच में बने हुए अंगूर-बेल के मंडप और जहाँ-तहाँ बनाये हुए फव्वारे वहाँ पर घूमनेवाले मनुष्यों को विश्राम दे, आनन्दित कर रहे हैं।

इसी वाटिका में एक प्रौढ़ यौवना सुन्दरी भी घूम रही है। उसके एक हाथ में डलियाँ (पुष्प चंगेरी) है और दूसरे हाथ से वह विविध प्रकार के रंग-बिरंगे पुष्पों को तोड़कर डलियाँ में रखती जा रही है। पुष्प चुनते हुए यह अपने सुमधुर कण्ठ से मनोहर गीत भी गाती-जाती है। कभी-कभी मकरन्द के लोभी भौंरे फूल पर से उड़-उड़कर उस रमणी को घबरा देते हैं। इसी समय वहाँ एक अधेड़ उम्र का पुरुष भी कहीं से आ पहुँचा। वह उस सुन्दरी को देखकर उसके पास आया और खड़ा हो गया।

उस सुन्दरी ने डरते-डरते पूछा - "भाई ! तुम कौन हो ? और यहाँ मेरे पास क्यों आये हो ?" उस अधेड़ पुरुष ने अपने हृदय का आशय प्रकट करते हुए कहा - "बहिन ! मैं एक मुसाफिर हूँ। किसी कारणवश घूमता-फिरता इधर आ निकला हूँ।" सुन्दरी ने उसका असली आशय जानने की इच्छा से प्रश्न किया, "तुम्हारा ऐसा क्या काम है जिसके लिए तुम खास करके यात्रा करने निकले हो ?" अधेड़ पुरुष ने पूर्ण विश्वास दिलाते हुए कहा - "मेरा कार्य तो साधारण है, परन्तु उसके लिए साहस की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि कोई इस कार्य को करने के लिए तैयार हो तो मैं उसमें जितना भी हो सकेगा उतना द्रव्य खर्च

करने के लिए तैयार हूँ।"

सुन्दरी ने भी अपना लुब्ध आशय प्रकट करते हुए कहा - "जो मनुष्य द्रव्य खरच ने को तैयार हो, उसके लिए संसार का कोई भी ऐसा कार्य नहीं है, जो न हो सके।"

सुन्दरी के मुख से यह वचन सुनकर, वह पुरुष अपने मन में बड़ा ही प्रसन्न हुआ और "अब मेरा काम बन जायगा।" जब ऐसी दृढ़ आशा उसके मन में पैदा हो गयी, तब उसने अपनी गुप्त बात कहनी शुरू की - "बहिन ! इस नगर में उत्तमकुमार नामक एक मेरा शत्रु रहता है। वह जब तक जीवित है, तब तक मेरे मन को शांति नहीं होती। इस शत्रु के नाम की याद आते ही, मेरी भूख, प्यास, और नींद उड़ जाती है, इसलिए किसी भी तरह उसे नष्ट करने की मेरी इच्छा है। मेरी इस इच्छा को पूरी करने वाले को मैं मुँह माँगा धन देने को तैयार हूँ।"

यह बात सुनकर वह स्त्री कहने लगी - "भाई ! उस उत्तमकुमार को मैं अच्छी तरह पहिचानती हूँ। वह प्रति दिन जिनालय में पूजन करने के लिए आता है और प्रभु की पूजा के लिए नित्य मेरे ही पास से फूल खरीदता है।"

स्त्री के यह वचन सुनते ही पुरुष ने उत्सुकता से कहा - "बहिन ! क्या तुम मालिन हो ? तब तो मेरा कार्य तुम्हीं से बन सकेगा। प्राचीन इतिहासों के देखने से मालूम होता है कि जो-जो कार्य मालिनों ने किये है वैसे कोई आज तक दूसरा नहीं कर सका है। भद्रे ! अब मुझे विश्वास हो गया कि आप मेरा काम जरूर सिद्ध करोगी।" ऐसा कहकर उस पुरुष ने सोने की मुहरों का एक हार निकालकर उस मालिन के गले में पहिना दिया।

लक्ष्मी एक ऐसी मोहिनी वस्तु है कि उसके द्वारा जिस तरह अच्छे से अच्छे काम होते हैं, उसी तरह बुरे से बुरे काम भी बन जाते हैं। मानवी हृदय को लुभाने वाली यह लक्ष्मी ही है। लक्ष्मी द्वारा आकर्षित लोभी मनुष्य सब प्रकार के दुष्कर्म करने के लिए तैयार हो जाते हैं। लक्ष्मी क्या नहीं कर सकती ? इस चपला का प्रभाव अवर्णनीय है। वह जिस तरह प्राणों का पोषण करती है उसी तरह उसको

हरण भी कर सकती है। लक्ष्मी के लोभ में पड़कर मनुष्य घोर हिंसा करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

सोना मोहरों के हार को प्राप्त करके वह मालिन बहुत ही प्रसन्न हुई। उस मनमोहक सुन्दर हार को देखकर वह फूली नहीं समाई। उसने मुस्कुराते हुए कहा - "सेठजी ! आपका शुभ नाम क्या है ? और आपका कार्य कब सिद्ध होना चाहिए? मैं आपकी दया से सब कुछ कर सकूँगी।"

मालिन के यह वचन सुनकर मन में प्रसन्न हो, उस पुरुष ने कहा - "भद्रे ! मेरा नाम कुबेरदत्त है, उत्तमकुमार मेरा कट्टर शत्रु है। एक समय मैंने उसे समुद्र में फेंक दिया था, परन्तु वह मुझ से बदला चुकाने के लिए फिर भी आज जीवित है। अब जैसे हो सके वैसे मैंने उसके लिए प्राण-नाश करने का निश्चय कर लिया है। मैंने कई उपाय सोचे भी परन्तु कोई भी मुझे ठीक नहीं जँचा। अन्त में तेरे मिलाप से मुझे आज अपने कार्य को बनने की पूरी आशा हो गयी है। बहिन ! बता तूं किस तरह मेरे इस कार्य को करेगी ?"

कुबेरदत्त के यह वचन सुनकर वह मालिन प्रसन्न मुख से कहने लगी - "सेठजी ! मैं अभी जिनालय में उत्तमकुमार को फूल देने जा रही हूँ। एक अच्छे सुगन्धित फूल में छेद कर के उसमें एक ज़हरीले छोटे सर्प को रख दूँगी और वह पुष्प उत्तमकुमार को पूजा के लिए दूँगी। जब उत्तमकुमार जिनपूजा के लिए उस सुगन्धित पुष्प को लेगा तो पुष्प-नलिका में बैठा हुआ वह विषधर-सर्प उसे काट खायगा, जिससे वह तत्काल मर जायगा। इस प्रकार आप अपने शत्रु के भय से मुक्त हो सकेंगे।"

मालिन की ऐसी चतुराई की बातें सुनकर कुबेरदत्त के हर्ष का पारावार नही रहा। वह बोला - "बहिन ! तेरी युक्ति प्रशंसा के योग्य है। इस काम के पूर्ण हो जाने पर मैं तुझे अन्य अमूल्य इनाम देकर खुश करूँगा।"

ऐसा कहकर उस मालिन से कुबेरदत्त ने वचन लिया, और स्वयं प्रतिवचन देकर पुनः इसी जगह कल मिलने का वादा करके चला गया। उस मालिन

ने धन के प्रलोभन में पड़कर विष प्रयोग करने की तैयारी कर ली ।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

मालिक और सेठ

"सेठ महेश्वरदत्त अपनी पुत्री के लिए योग्यवर न मिलने पर भी उसके विवाह की तैयारियाँ कर रहा है, और विवाह के बाद अपने दामाद-जँवाई को अपनी सारी सम्पत्ति का मालिक बनाकर पंच महाव्रत ग्रहण करेगा ।" इस समाचार को श्रवण कर राजा नरवर्मा के हृदय में सेठ महेश्वरदत्त से मिलने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई, और उन्होंने अपने एक मंत्री को भेजकर सेठजी को बुलवाया । मंत्री ने जाकर महेश्वरदत्त को राजा की आज्ञा कह सुनायी । सेठ बड़ा ही प्रसन्न हुआ । उसके रोम रोम में राज-भक्ति जागृत हो उठी । वह महाराजा के दर्शन करने को बड़ा ही उत्सुक हुआ और अपने को और उस दिन को वह धन्य समझने लगा ।"

राजा नरवर्मा अपने दामाद उत्तमकुमार के लापता हो जाने से चित्त में अत्यन्त दुःखी था । इसीलिए उसकी मनोवृति में वैराग्य की भावनाएं प्रबल हो गयी थी । यह असार संसार उसे सूना मालूम पड़ता था । जगत के नश्वर पदार्थों पर उसे अरुचि उत्पन्न हो गयी थी ।

विरक्त की तरह बैठे हुए महाराजा को द्वारपाल ने आकर सूचित किया - "प्रभो ! अपने नगर के प्रसिद्ध सेठ महेश्वरदत्तजी राजद्वार पर आपके दर्शनों की इच्छा से खड़े हैं ।" द्वारपाल के यह वचन सुनते ही महाराजा संभ्रम से उठ खड़े हुए और उसके स्वागतार्थ राज महल के अन्तर्द्वार के पास जाकर खड़े हो गये । द्वारपाल सेठ को लेकर महाराजा के पास आया । महाराजा ने उसका सम्मान कर अपने सिंहासन के पास ही एक सुन्दर योग्य आसन पर आदर पूर्वक बिठाया ।

कुशल प्रश्न के बाद महेश्वरदत्त ने कहा - "सरकार ! इस सेवक को क्या

आज्ञा है ? आज का दिन धन्य है कि आपने मुझे बुलाकर दर्शन दिये ।"

नरवर्मा ने प्रसन्नता पूर्वक कहा – "सेठजी ! मैं भी आपके दर्शनों से कृतार्थ हुआ हूँ । आप जैसे पवित्र गृहस्थ मेरी राजधानी में निवास करते हैं इसे मैं अपना पुण्य योग समझता हूँ । धार्मिक और विश्वस्त प्रजा पर राज्य करने वाला राजा वास्तव में पुण्यवान गिना जाता है । सेठ साहिब ! मेरे सुनने में आया है कि आप अपनी पुत्री का विवाह करने के बाद त्याग वृत्ति धारण की इच्छा रखते हो, – जीवन के शेष दिनों में परलोक साधन करने की प्रवृत्ति धारण करना चाहते हो ।"

महेश्वरदत्त ने नम्रता पूर्वक निवेदन किया – "महाराज ! यदि मेरी धारणाएँ पूर्ण हो जावें तो, ऐसी मेरी इच्छा अवश्य है । परन्तु यह सब कर्माधीन है । बाधाओं से परिपूर्ण इस संसार से मुक्त होना अत्यन्त कठिन कार्य है । कर्म के आधीन होकर मनुष्य-प्राणी विचारता क्या है और होता कुछ और ही है । कर्म के जटिल-जाल से निकलना बहुत ही मुश्किल है ।"

राजा ने धैर्य देते हुए कहा – "सेठजी ! आप की दृढ़ता देखकर मुझे तो पूर्ण विश्वास होता है कि आपकी इच्छा अवश्य ही सफल होगी । आपकी शुद्ध मनोवृत्ति आपकी मनोभिलाषा पूर्ण करेगी । भद्र ! आपके ऐसे पवित्र विचारों को सुनकर मेरे हृदय में भी ऐसी ही भावना उत्पन्न हुई है । यदि आप मुझे सहायता देने की इच्छा रखते हो तो मेरी शुद्ध भावना को भी पुष्टि मिलेगी । इस राज्य लक्ष्मी का त्याग करके परलोक साधन में प्रवृत्ति करने का मैंने भी निश्चय कर लिया है । जब से आप के विचार मेरे श्रवण करने में आये हैं, तभी से यह महत्कार्य करने के लिए मैं भी शीघ्र ही तैयार हो गया हूँ । परन्तु दैवयोग से अभी एक महान्-विघ्न आ गया है, जिसने मेरी धारणा में गड़बड़ी पैदा कर दी है ।"

महेश्वरदत्त ने बड़ी ही उत्सुकता से पूछा – "महाराज ! ऐसा क्या विघ्न आ गया है ? नरवर्मा ने संक्षेप में कहा – "मेरी पुत्री तिलोत्तमा के पति न जाने अचानक कहाँ चले गये ? कुछ पता नहीं लगता । वे प्रातः काल जिन-पूजा करने गये थे, परन्तु अभी तक वापस ही नहीं लौटे ! शहर और आसपास के स्थानों में बहुत

खोज करवायी परन्तु उनका पता नहीं चला। इस आकस्मिक विघ्न से मेरा हृदय चिंता और दुःख से व्याकुल है। इसलिए मेरी पवित्र धारणा की सफलता में मुझे शंका उत्पन्न हो गयी है। यदि यह आकस्मिक घटना न हुई होती तो आज ही मैं इस असार संसार से मुक्त होकर मुनि मार्ग का पथिक बन गया होता। यह विशाल राज्य लक्ष्मी अपने जँवाई को दे, आपके सुविचारों का अनुसरण कर, अपने आत्मा के उद्धार करने के लिए कभी की दीक्षा ले ली होती। परन्तु कर्म योग से इस विघ्न ने मुझे निवृत्ति मार्ग में प्रवृत्त होने से रोककर प्रवृत्ति मार्ग के बंधन से मजबूत बाँध दिया है।"

महेश्वरदत्त ने उदास चित्त होकर कहा - "राजेन्द्र ! आपके मुँह से यह अन्तराय (विघ्न) की बात सुनकर मुझे बहुत ही अचंभा होता है। आपके तरुण वयस्क जँवाई का लापता हो जाना सुनकर प्रत्येक सुनने वाले को आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। इस पर भी जिन पूजा जैसे पवित्र कार्य के लिए गये हुए पुरुष के काम में विघ्न-बाधा उपस्थित हो, यह भी एक असम्भव बात है ! शासन देवता आपके विघ्न को दूर करके आपको शुभ मार्ग दिखाये।"

महेश्वरदत्त की यह साहस युक्त बातें सुनकर राजा नरवर्मा जरा आश्वासन पाकर बोले - "सेठजी ! आपकी पुत्री का विवाह किस दिन का है ? और उसके लिए कौन सा योग्य वर है ?"

महेश्वरदत्त ने जरा खेद प्रकट करते हुए कहा - "स्वामिन् ! अभी कोई योग्यवर मेरी पुत्री के लिए निश्चित नहीं हुआ है। सिर्फ एक योग्य ज्योतिषी के कहने पर से ही मैंने उसके विवाह की सब तैयारीयाँ की है। अब क्या होगा ? इसे परमात्मा जाने। उस विद्वान् ज्योतिषी ने अपने ज्ञान बल से दावे के साथ कहा है कि "एक महीने में तुम्हारी पुत्री को योग्य पति मिल जायगा, इसलिए तुम शंका रहित होकर विवाह की तैयारियाँ करो।" उसके इन वचनों पर विश्वास करके मैंने विवाह की सब सामग्री तैयार की है। अब आगे जो कुछ भी हो सो ठीक है।"

महेश्वरदत्त के यह वचन सुनकर महाराजा नरवर्मा ने उसे धैर्य देते हुए

कहा, - "सेठजी ! किसी भी तरह की चिंता न करो । कर्म की अनुकूलता होगी तो सब काम पूरे पड़ जायेंगे । धर्म तथा सुकृति के विचार अधिकतर सफल ही होते हैं । हम दोनों एक ही साथ इस संसार के मार्ग से मुक्त होकर, परलोक सुधार के पवित्र मार्ग के अनुगामी होंगे । जैन शासनपति आपकी चिन्ता दूर करे ।"

राजा नरवर्मा के इन वचनों से सेठ महेश्वरदत्त हृदय में अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसकी विवाह सम्बन्धी भविष्यकी चिन्ता कुछ शान्त हो गयी ।

तत्पश्चात् स्वामी और सेठ दोनों, ऐसी उत्तम भावना भरी बातें करके तथा अपने-अपने कर्तव्य का मार्ग निर्धारित कर अलग हो गये।

बीसवाँ परिच्छेद

पक्षी का पाण्डित्य

महाराजा नरवर्मा अपने राज महल में बैठा हुआ था । राज्य के अधिकारी लोग उसके आगे आ आकर अपने अधिकार - प्रबन्ध का वृतान्त निवेदन करते और नया हुक्म देने की प्रार्थना करते थे । नीति परायण महाराजा, न्याय पूर्वक विचार करके उन राज कर्मचारियों को नई-नई आज्ञाएँ दे रहा था । साथ ही उन्हें, अपनी राजभक्त प्रजा को सब तरह से संतुष्ट रखने की हिदायतें देता था । यद्यपि राजा नरवर्मा अपने जँवाई के कहीं चले जाने के कारण अत्यन्त चिन्ताग्रस्त रहता था । तथापि राज्य-कार्य में निश्चित होकर भाग लेता था । प्रजा द्वारा कुछ भी शिकायत सुनने में आती तो दूसरी सब बातों को एक तरफ रखकर, पहिले वह उस पर ध्यान देता था ।

राज महल के एक गवाक्ष में से राजा की नजर सामने के चौराहे पर पड़ी । चौराहे पर इकट्ठे हुए लोगों का झुंड भी उसे दिखाई पड़ा । देखते ही उसके हृदय में उस बात को जानने की उत्सुकता उत्पन्न हुई । शीघ्र ही राजा ने सेवक को बुलाकर आज्ञा दी - "इस चौराहे पर इतने लोग क्यों इकट्ठे हुए है ? इस बात का

पता लगाकर शीघ्र आओ।" महाराज की आज्ञा पाते ही नौकर महल से उतर कर दौडता हुआ वहाँ पहुँचा जहाँ पर लोग इकट्ठे थे। वहाँ जाते ही "अहा! पक्षी का पाण्डित्य कैसा अद्‌भुत है!" यह वाक्य प्रत्येक दर्शक के मुँह सुनाई पड़ा। उसने सोचा, "पक्षी का पाण्डित्य" यह कैसी विचित्र बात है?" उसकी उत्सुकता और भी बढ़ गयी और लोगों की भीड़ में घुसकर उसने सभ्य पुरुषों से पूछा। उसे थोड़ी ही देर में इस बात का पूरा पता लग गया कि यह मामला क्या है? तत्काल वह वहाँ से लौट आया और उसने महाराजा नरवर्मा से निवेदन किया - "सरकार! प्रसिद्ध सेठ महेश्वरदत्त की ओर से यह ढिंढोरा पीटा गया है कि: जो कोई राजकुमारी तिलोत्तमा के पति को ढूँढ़ लायगा अथवा उसकी खबर देगा, उसी के साथ मैं अपनी सहस्त्रकला नाम की कन्या का विवाह कर दूँगा। इसके साथ ही सरकार की तरफ से एक दूसरी डोंड़ी पीटी गयी है कि - जो पुरुष राजकुमारी तिलोत्तमा के पति का पता लगायगा अथवा ढूँढ लायगा उसे महाराजा नरवर्मा अपना राज दे देंगे।"

इन दोनों बातों का ढिंढोरा नगर में फिर रहा था। जब घोषणा का ढोल बजता-बजता राज महल के पास वाले चौराहे पर आया तब एक तोते ने आकर उन दोनों ढोलों को छुआ। यह अद्‌भुत चमत्कार देखकर ढोल बजानेवाले चकित हो आश्चर्य से वहीं खड़े रह गये। इतने ही में उस पक्षी ने मनुष्य वाणी में बोलते हुए कहा - "भाइयो! मुझे राजा के पास ले चलो, मैं राजा के जँवाइ का वृतान्त कह दूँगा।" तोते की ऐसी स्पष्ट वाणी सुनकर लोग आनन्द तथा आश्चर्य प्रकट करने लगे। यह बात सारे चौराहे में फैल गयी, और लोग झुण्ड के झुण्ड इकट्ठे हो गये। लोग उस तोते के पाण्डित्य की प्रशंसा करते हैं।

नौकर के मुँह से यह बात सुनते ही राजा नरवर्मा अत्यन्त आनन्दित और आश्चर्य-चकित हो गया। उसकी मुरझाई हुई आशालता एकदम लहलहाने लगी। महाराजा ने तुरन्त आज्ञा दी कि - "उस पक्षी को जल्दी से जल्दी यहाँ ले आओ।" आज्ञा पाते ही नौकर चाकर दौड़े गये और ढोल बजाने वालों के साथ

उस तोते को दरबार में ले आये।

वह शुक पक्षी राजा के पास आया, और उसने विनय पूर्वक सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। राजा ने भी प्रेम पूर्वक हाथ ऊँचा करके उसका प्रणाम स्वीकार किया।

राजा ने पूछा - "पक्षिराज ! आप पक्षी रूप में कौन हैं ? और मेरे जँवाई की क्या खबर देते हो ?"

पक्षी ने कहा - "राजन् ! यदि आप प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य करने का वचन दें तो मैं आपको आपके जँवाई का सब हाल कह सुनाऊँ।"

राजा ने कहा - "यदि तुम उत्तमकुमार की सच्ची सच्ची खबरें दे सकोगे तो मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य करूँगा ? उत्तम पुरुष कभी भी अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं करते हैं। मैं इसे भली-भाँति समझता हूँ।"

पक्षी ने कहा - "राजेन्द्र ! आप अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहें। मैं भूत, भविष्य और वर्तमान का जानने वाला हूँ। यदि मेरा कथन सत्य हो तो आपको अपना राज्य और महेश्वरदत्त को अपनी कन्या मुझे तत्काल देनी पड़ेगी।" यदि सहस्त्रकला के देने की बात आपके वश की न होतो उसके पिता महेश्वरदत्त को भी यहीं बुला लिया जाय और पहिले तय कर लिया जाय ?

पक्षी के कथनानुसार राजा ने नौकर को भेजकर सेठ महेश्वरदत्त को वहाँ बुला लिया। साथ ही दूसरे और भी कई नगर के प्रतिष्ठित लोगों को भी बुलवा भेजा। राजा के पूछने पर महेश्वरदत्त ने अपनी कन्या सहस्त्रकला उसे देने का वचन दिया। ऐसा होने पर राजा ने उस सेठ का अत्यन्त आभार माना। तदनन्तर भरे दरबार में वह चतुर पक्षी मानुषी भाषा में बोला -

"राजन् ! आपके जँवाई उत्तमकुमार का पहिले मैं पूर्व वृतान्त कहता हूँ, सुनो। वह उत्तमकुमार वाराणसी नगरी का राजकुमार है। उसके पिता का नाम मकरध्वज है। वह अपने पिता से लुक-छिप कर विदेश भ्रमण करने के लिए निकला था। अपनी जन्म भूमि वाराणसी से चल कर वह भृगुकच्छ नगर

में आया, वहाँ से जहाज में बैठ कर उसने समुद्र यात्रा की। मार्ग में एक द्वीप आया। उस समय प्यास से घबराये हुए मनुष्यों के उपकारार्थ वह द्वीप गिरि के एक कुएँ में उतरा। कुएँ में एक द्वार था। उसके द्वारा उसने अन्दर घुसकर एक देव-भवन के समान महल देखा। उस महल में लंकाधिपति राक्षस भ्रमरकेतु की पुत्री मदालसा से मिला। मदालसा ने उसके साथ गान्धर्व विवाह किया। इसके बाद राक्षस पिता द्वारा रखी हुई अपनी एक वृद्धादासी सहित वह राक्षस कन्या मदालसा राजकुमार के साथ वहाँ से चल पड़ी।"

पश्चात वहाँ पर रहे हुए कुबेरदत्त व्यपारी के जहाज पर वह अपनी स्त्री सहित सवार हुआ। राक्षसपुत्री मदालसा के पास पाँच दिव्य रत्न थे, उनके द्वारा उसने कुबेरदत्त के जहाज में के प्यासे लोगों की प्यास बुझा दी। सात ही उसने रत्नों के प्रभाव से अन्न भोजन प्रदान करके लोगों को सुखी किया। रूप यौवन सम्पन्न मदालसा और उसके उत्तम पाँच रत्न देखकर कुबेरदत्त के हृदय में विकार पैदा हुआ। उसने उस कुमार को मार डालने की ठानी। एक दिन उसने रात के समय उत्तमकुमार को समुद्र में धक्का देकर गिरा दिया। समुद्र में तैरते हुए एक बड़े भारी मगर ने उसे निगल लिया। उस मगर को धीवरों ने पकड़ा। मगर का शरीर चीरने पर दैवयोग से उसके पेट में से उत्तमकुमार जीवित ही निकला। धीवरों ने उसे उत्तमपुरुष जानकर अपने घर रखा। एक दिन वह राजकुमार शहर देखने की इच्छा से निकला। उसने राजकुमारी के महल निर्माण में चातुर्य प्रदर्शित कर महान् ख्याति प्राप्त की। कुछ दिनों बाद राजकुमारी तिलोत्तमा को सांप काटा तब उसने अपने मंत्र-बल से उसे अच्छी करके उसके साथ विवाह किया। तदनन्तर राज सुखों को भोगता हुआ वह राजपुत्र बड़े ही आनन्द से रहने लगा। एक दिन जिन पूजन के निमित्त जिनालय में गया। विधिपूर्वक पूजन करते समय एक सुन्दर फूल हाथ में आया। उसमें मोम से बन्द की हुई एक नलिका को उसने खोला तो उसके भीतर बैठे हुए सर्पने उसे काट खाया। सर्प विष से अचेत होकर वह वहीं गिर गया।"

इतनी बात कहकर पक्षी ने कहा - "महाराज ! आपके अन्तःपुर में मदालसा नामकी जो आपकी पुत्री की सखी है वह वही राक्षस पुत्री है । वह उत्तमकुमार की पहिली पत्नी तथा आपकी पुत्री की सपत्नी है । राजन् ! यह मदालसा और राजकुमार का वृत्तान्त मैंने आपको कह सुनाया । अब अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आप सेठजी की कन्या और अपना राज्य मुझे सौंप दीजिये ।"

पक्षी की यह बात सुनकर राजा नरवर्मा ने आश्चर्य-चकित हो कहा - "पक्षिराज ! इतनी बात कहने से राजकुमार का कुछ पूरा पता नहीं लगा । जिनालय में अचेत पड़े हुए उस राजकुमार का फिर क्या हुआ ? अब यह कहना आवश्यक है !"

पक्षी ने चतुराई से कहा - "महाराज ! यह तो ठीक है । परन्तु मैंने जितनी भी बातें आपसे कही वे सत्य हैं, इसलिए आपको मुझे सहस्त्रकला कन्या और राज्य दे देना चाहिए । मैं सहस्त्रकला से विवाह करके अच्छी तरह राज्य चलाऊँगा । राजन् ! मेरा मनोरथ पूरा कीजिए, मैं आपको शुद्ध मन से आशीर्वाद दूँगा ।"

राजा ने आक्षेप करते हुए कहा - "पक्षिराज ! मुझे अपनी प्रतिज्ञा पालन करना आवश्यक है परन्तु एक पक्षी, राज्य कार्य कैसे चला सकेगा ! किसी प्रकार तेरे साथ विवाह कर देने पर मानव स्त्री क्या सुख पा सकेगी ?"

पक्षी ने क्रोध करते हुए उसी समय कहा - "श्रीमान् ! अब आपको ऐसी शंका करने का कोई अधिकार नहीं है । यदि आपको अपनी प्रतिज्ञा पालन करना हो तो आप मुझे राज्य और कन्या दीजिए । मैं कुछ भी करूं इस विषय में आपको प्रश्न करने की आवश्यकता नहीं है . इसपर यदि आप अपनी प्रतिज्ञा भंग करना चाहें तो करें, इसकी मुझे कुछ चिंता नहीं है । मैं अपनी फल-फूलों की आजिविका पर स्वतंत्रता पूर्वक वन में घूमूँगा-फिरूँगा । आपका भला हो ? राजन् ! जरा अपने मन में सोचिए - आप पृथ्वीपति होकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं करते - यह अन्याय है । मैंने आपको यह वृतान्त कहा है, अब आप मुझसे बात सुनकर मुझे निराश करते हैं ।" यह तो "फोड़ा फूटा और वैद्य वैरी" वाली बात हुई है ।

इतना कहकर पक्षी ने उड़ना चाहा - परन्तु राजा ने उसे हाथ से रोककर कहा - "शुकराज ! धैर्य रखो, मैं अपनी प्रतिज्ञा कदापि नहीं तोड़ूँगा । मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम मुझे यह बताओ कि वह राजकुमार जीवित है या नहीं ? मुझे सत्य-सत्य कहो ।"

पक्षी ने धीरे से कहा - "राजेन्द्र ! मैंने आपको इतना वृतान्त कहा, परन्तु आप मुझे अपनी प्रतिज्ञा पर अटल नहीं मालूम पड़ते इसलिए अब आगे का हाल कहने की मेरी इच्छा नहीं होती ।" पक्षी के यह वचन सुनकर एक ओर बैठी हुई अन्तःपुर की स्त्रियों में से निकल कर मदालसा सामने आयी और उसने पक्षी के पैरों को छूकर कहा - "प्यारे पक्षिराज ! मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ । उस मेरे प्राणाधार राजकुमार की सच्ची खबर सुनाओ ।"

मदालसा की प्रार्थना सुनकर, उस पक्षी के हृदय में दया उत्पन्न हो गयी । वह बोला - "सुनो ! वह राजकुमार जब बेहोश होकर जिनालय में पड़ा हुआ था; तब वहाँ मूर्तिमान अनङ्ग की सेना के समान 'अनङ्गसेना' नामक एक वेश्या प्रभु के दर्शन करने के लिए वहाँ आयी । वह मंत्र-तंत्र में प्रवीण थी । उसने उत्तमकुमार को जिनालय में बेहोश पड़ा देखा । कुमार का अनुपम रूप देखकर वह वेश्या उस पर मोहित हो गयी । उसके पास विषनाशक एक मणि थी । वह उस राजकुमार को उठाकर अपने घर ले गयी । विषहारिणी मणि को जल में धोकर उस जल से उसने राजकुमार के शरीर को छींटे दिये । जल सिंचन से राजकुमार का जहर तत्काल उतर गया और वह उठ बैठा । उसने प्रसन्न होकर वेश्या से कहा - "सुन्दरि ! तुमने मुझे जीवित किया है, इसलिए मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ; जो तुम्हारी इच्छा हो मुझसे माँग लो ।" वेश्या ने कहा - "प्रिय राजकुमार ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझसे अपना प्रेम सम्बन्ध करें । आपके प्रेम रस में मग्न होने की मेरी इच्छा है ।" वचन में बंधजाने के कारण राजकुमार को यह बात माननी पड़ी । उसने वेश्या से अपना प्रेम जोड़ लिया और वेश्या के रूप-शृङ्गार में मग्न हो उसके यहाँ रहने लगा । महाराज ! वह पवित्र राजकुमार अपना वचन पालने

के लिए उस वेश्या के यहाँ रहा। इस पर से आपको सोचना चाहिए कि बड़े लोग अपने वचन का पालन करना कितना आवश्यक समझते हैं ! यह बात आपको ध्यान में रखनी चाहिए। आपने जो वचन मुझे दिया है, वह आपको अवश्य ही पूर्ण करना चाहिए । राजन् ! मैंने आपको यह सब वृतान्त कहा अब आप मुझे सहस्त्रकला सहित राज्य दो । यदि आप ऐसा करना नहीं चाहते हैं तो, मुझे आज्ञा दो, मैं अपने निवास स्थान में जाकर आनन्द करूँ।"

तोते के मुख से यह बात सुनकर राजा ने कहा - "पक्षिराज ! आपका कहना कहाँ तक सत्य है, यह मुझे मालूम कर लेना चाहिए। इसलिए आप थोड़ी देर, यहीं आराम कीजिए । मैं अपने विश्वास पात्र नौकरों को उस अनङ्गसेना के घर भेजकर यह पता लगाये लेता हूं कि उत्तमकुमार वहां है या नहीं ? आपका कहना यदि सत्य है तो नौकर अभी देखकर आ जाते हैं।" यह कहते हुए राजा ने अपने विश्वस्त सेवकों को अनङ्गसेना के घर भेजा । तब तक वह पक्षी चुपचाप वहीं दरबार में बैठा रहा।

थोड़ी ही देर बाद राजा के नौकर अनङ्गसेना के घर जाकर लौट आये । उन्होंने महाराजा से नम्रता पूर्वक कहा - "प्रभो ! अनङ्गसेना वेश्या के घर में तो राजकुमार नहीं है। हमने उसके घर के प्रत्येक गुप्त तथा प्रकट स्थानों को अच्छी तरह देख लिये, परन्तु उत्तमकुमार कहीं भी देखने में नहीं आये ।"

सेवकों के यह वचन श्रवण कर, राजा निराश हो गया । उसने पक्षी को उलाहना देते हुए कहा - "कहिए ! शुकराज ! यह क्या मामला ? तुम्हारी बातों से तो मेरा विश्वास उठ गया । ऐसे असत्य समाचार पर प्रतिज्ञा की हुई वस्तुएँ आपको किस तरह दी जा सकती है ? आपके कहे वृतान्त में मुझे थोड़ीसी सत्यता मालूम होती है इसलिए आप पर से मेरा विश्वास बिलकुल उठ नहीं गया है । आपके कहे हुए मदालसा के वृतान्त ने जो मेरे हृदयपर विश्वास स्थापित किया है वह विश्वास की छाप अभी तक मेरे हृदय से मिटी नहीं है। अतएव हे शुक ! कृपा करके अब इस विषय में जो कुछ भी सत्य बात हो वही कहो।"

राजा की पूर्ण उत्कण्ठा और अपने प्रति श्रद्धा देखकर वह तोता बोला – "राजेन्द्र ! आपके सेवक अनङ्गसेना का घर ढूँढकर वापस आ गये । परन्तु उस अनंगसेना ने क्या किया, वह सुनो । उस चतुर वेश्या को यह पहले ही मालूम था कि यह राजकुमार महाराजा नरवर्मा का जँवाई है, इसलिए इसे छिपाकर रखना चाहिए । ऐसा विचारकर उस प्रवीण वेश्या ने एक सूत का डोरा मंत्रित करके उसके पैर में बाँध दिया । इससे वह पुरुष तोता पक्षी बन गया । वह विषयी वेश्या नित्य रात्रि के समय वह डोरा खोलकर उसे पुरुष बना लेती है, और सारी रात आनन्द पूर्वक बिताकर फिर प्रातः काल उसके पाँव में डोरा बाँधकर उसे तोता बनाकर पिंजरे में बन्द कर देती है । अब वह वेश्या राजकुमार को पक्षी बनाकर पिंजरे में बन्द करती है, उस समय वह राजकुमार दुःखी होकर कहा करता है –

मानव से पक्षी बन्यो, मैं क्या कीन्हों पाप ।
इस भव में सहने पड़े, महा कठिन सन्ताप ।।
हाँ हाँ, मैंने है हरी, पिता अदत्त नार ।
व्याही कुंवरि मदालसा, पाँच रत्न लिये सार ।।
ये दो पाप किये यहाँ, तिनसों डस्यो भुजङ्ग ।
वेश्या घर में आनकर, नर को बन्यो विहंग ।।

इस तरह वह राजकुमार उस वेश्या के घर एक महीने तक रहा । एक दिन भूल से अनंगसेना पिंजरे का द्वार खुला छोड़कर किसी काम से बाहिर चली गयी । पक्षी रूप में परतंत्र राजकुमार मौका देखकर उस पिंजरे से उड़ गया । राजन् ! अब मैं जो बात कहूँगा उसे सुनकर आप बड़े ही प्रसन्न होंगे । किन्तु आपको अब अपना वचन पालन करना पड़ेगा ।

आज आपकी आज्ञा से शहर में ढिंढोरा पिट रहा था । उसे सुनकर वह पक्षी वहाँ आया और उसने ढोल को छुआ । पक्षी की यह हरकत देखकर वहाँ पर लोगों का झुंड इकट्ठा हो गया । इसके बाद वह पक्षी आपकी आज्ञा से यहाँ लाया गया । महाराज ! वह पक्षी मैं ही हूँ । मेरे पाँव में बँधा हुआ यह डोरा तोड़ डालिए ।

ताकि मैं अपने असली रूप में हो जाऊँ।

पक्षी की यह बातें सुनकर राजा तथा बैठे हुए सभाजन आनन्दित हो, आश्चर्य-सागर में मग्न हो गये। राजा नरवर्मा का हृदय आनन्द से खिल उठा। उसने स्वयं अपने हाथों से पक्षी के पैर में बंधा हुआ डोरा खोल दिया। उसी समय वह पक्षी उत्तमकुमार के रूप में परिवर्तित हो गया। उसने आदर और प्रेमपूर्वक पहिले महाराजा को और बाद में सभा के अन्य सज्जनों को प्रणाम किया। राजा आदि सभी लोग आश्चर्य पूर्वक उस राजकुमार से मिले। सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द दिखाई देने लगा। तिलोत्तमा और मदालसा के आनन्द का पारावार न रहा। यह बात सारे नगर में फैल गयी। लोग आश्चर्यान्वित होकर इस विषय में नये-नये तर्क करने लगे। कोई अनंगसेना की शक्ति की तारीफ करने लगे, कोई उत्तमकुमार के गुणों की प्रशंसा करने लगे। कोई कर्म की अनुकूलता की प्रशंसा करने लगे तो कोई-कोई धर्म के महत्व की प्रशंसा करने लगे। कोई कर्म की विचित्रता का वर्णन करने लगे और कोई पक्षी के पाण्डित्य की प्रशंसा करने लगे।

मानो मृत्यु होने के बाद उसका पुनर्जीवन हुआ हो, यह मान कर उत्तमकुमार के स्नेही और मित्र उससे मिलने के लिए आने लगे। वे राजकुमार को देख-देख कर अपना अहोभाग्य समझने लगे।

राजकुमार के मिल जाने के हर्षोपलक्ष्य में राजा नरवर्मा ने समस्त जिनालयों में महोत्सव करने की तथा बृहत्स्नात्र और बड़ी पूजा करने की आज्ञा दी। पाठशाला में पढ़ने वाले बालक बालिकाओं को मिठाई बाँटी गयी। विद्वान, कवि और गुणीजनों को पुरस्कार तथा असंख्य याचकों को दान दिया। इस प्रकार मोटपल्ली नगर में घर-घर आनन्दोत्सव मनाया गया।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

अभय दान

उत्तमकुमार के मिल जाने पर राजा नरवर्मा बड़ा ही आनन्दित रहने लगा। एक दिन वह न्यायासन पर बैठा था। उसके पास कई नीति-निपुण न्यायाधीश भी अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार बैठे हुए थे। न्याय मंदिर में बैठे हुए महाराज के सिर पर अदृश्य रूप से नीति देवी छत्र लिये खड़ी थी। गरीब से लगा कर अपने राज परिवार तक को एक दृष्टि से देखने वाले राजा के दरबार में बिलकुल उचित न्याय होता था।

इसी समय एक सेवक ने आकर महाराजा को प्रणाम करते हुए कहा - "नरेन्द्र ! आपकी आज्ञानुसार वह मालिन हाजिर है, जैसी आज्ञा हो पालन किया जाय।" सेवक के मुँह से यह बात सुनते ही महाराजा ने उसे दरबार में हाजिर करने का हुक्म दिया। सेवक ने उस अपराधिनी मालिन को महाराजा के समक्ष लाकर खड़ी की। मालिन को देखते ही राजा ने क्रोध पूर्वक पूछा - "बाई ! तूं कौन है।"

मालिन ने कहा - "महाराज ! मैं आपके बगीचे की मालिन हूँ।"

राजा - "तेरा नाम क्या है ?"

मालिन - "मेरा नाम चपला है।"

राजा - तूं बगीचे में क्या काम करती है ?

मालिन - मैं हमेंशा फूल लाने का कार्य करती हूँ।

राजा - उन पुष्पों को लाकर तूं क्या करती है ?

मालिन - वे फूल जगह जगह देती हूँ।

राजा - कहाँ-कहाँ देने जाती है ?

मालिन - हजूर ! दरबार में, जिनमन्दिर में और मंत्रीजी के घर।

राजा - पुष्पों के देने से तुझे क्या मिलता है ?

मालिन - मुझे राज्य की तरफ से वार्षिक जीविका मिलती है।

राजा - मंत्री की तरफ से तुझे क्या मिलता है ?

मालिन - कभी किसी पर्वोत्सव के समय अच्छा इनाम मिल जाया करता है।

राजा - जिनमन्दिरों से क्या मिलता है ?

मालिन - कोई अच्छा गृहस्थ जिनपूजा के लिए यदि मुझसे पुष्प लेता है तो वह मुझे इनाम दे जाता है।

राजा - तूं उत्तमकुमार को पहिचानती है ?

मालिन - (मन में कुछ सोच कर) नहीं ; मैं उसे नहीं जानती।

राजा - कोई राजकुमार हमारा जंवाई है और वह इस दरबार में रहता है, यह बात तुझे मालूम है ?

मालिन - हाँ, मैं राजकुमारी तिलोत्तमा के महलों में जब फूल देने जाती हूँ, तब वहाँ कई बार उन्हें देखती हूँ।

राजा - उनका नाम क्या है यह तुझे मालूम नहीं ?

मालिन - उनके नाम का मुझे पता नहीं है।

राजा - वह कभी जिनपूजा करने के लिए जिनालय में आते हैं या नहीं ?

मालिन - यह बात भी मुझे मालूम नहीं।

राजा - तूं उन्हें देखकर पहिचान भी सकती है या नहीं ?

मालिन - हाँ,

यह सुनकर राजा ने उत्तमकुमार को बुला लाने के लिए एक नौकर भेजा। वह नौकर दौड़ा हुआ गया और उत्तमकुमार को बुला लाया। राजा ने उसे आदर पूर्वक अपने पास आसन पर बिठाया। कुमार की ओर संकेत कर राजा नें मालिन से पूछा - "क्यों बाई ! इनको तूं पहिचानती है ?"

मालिन - हाँ, पहिचानती हूँ, यह तिलोत्तमा बाई के पति देव हैं।"

राजा - ये कभी जिनालय में पूजा करने गये थे ?

मालिन - यह मुझे नहीं मालूम।

राजा - तूने कभी जिनपूजा के लिए इन्हें पुष्प दिये हैं ?

मालिन – नहीं, मुझे कभी ऐसा मौका नहीं मिला।

राजा – देख, सत्य कहना। यदि झूँठ बोलेगी तो तुझे काफी दण्ड दिया जायगा।

मालिन – महाराजाधिराज ! मैं सत्य ही बोल रही हूँ। मैंने कभी भी इन्हें जिनालय में नहीं देखा और न कभी मैंने इन्हें पूजा के लिए फूल ही दिये हैं।

राजा ने राजकुमार की ओर देखकर कहा – "क्यों क्या इस मालिन का कहना सत्य है?"

राजकुमार – "पूज्य महाराज ! यह सर्वथा असत्य बोल रही है। परन्तु स्त्री जाति को अधिक दण्ड देना ठीक नहीं है।"

राजा – अरे दुष्टा ! तूं न्यायासन के सामने भी ऐसी झूँठी बातें कहती है ! अब मैं तुझे कठोर दण्ड दूँगा। जो सच बात हो वह कह दे। महाराजा को क्रुद्ध देखकर, वह मालिन काँप उठी और नीति देवी के प्रताप से डरती हुई कहने लगी – "अन्नदाता ! मुझे क्षमा करो। मैं आपके आगे सच-सच अर्ज करती हूँ। एक समय मैं आपके बगीचे में फूल तोड़ने गयी थी। वहाँ कुबेरदत्त नामक कोई एक व्यापारी मेरे पास आया। उसने स्वर्ण का हार देकर मुझे ललचाया और मैंने पुष्प की नलिका में तम्बोली नाग रखकर इन राजकुमार को जिनालय में दिया था। मैंने लोभ के वशीभूत हो, ऐसा नीच कृत्य किया है। अब मेरा अपराध क्षमा करें। भविष्य में अब ऐसा अपराध मुझ से कदापि न होगा।"

मालिन के मुँह से ऐसी बात सुनकर राजा को बड़ा ही क्रोध आया। उसने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि "इस पापिनी को मार डालो। मेरे नीति पूर्ण राज्य में ऐसी दुष्टा स्त्रियों की आवश्यकता नहीं है। ऐसी स्त्रियों के रहने से प्रजा की रीति और उनकी नीति में विघ्न उत्पन्न होते है। साथ ही इसे इस दुष्ट कार्य की प्रेरणा करने वाले उस पापी कुबेरदत्त को भी ढूँढ़ लाओ। उसे भी प्राणदण्ड की सजा दो। राजकुमार को समुद्र में धकेलने वाले और विषप्रयोग करवाकर मालिन से ऐसा कुकृत्य करवानेवाले – नर पिशाच को इस दुनिया से उठा देना ही ठीक है।"

राजा के मुँह से ऐसी भयङ्कर दण्डाज्ञा सुनकर दयालु उत्तमकुमार ने

प्रार्थना पूर्वक राजा से निवेदन किया - "राजेन्द्र ! क्षमा करो, इन दीन पामर अपराधियों को छोड़ ही दो। इन्होंने कर्म के वशीभूत होकर ऐसा किया था। कर्म के अन्धकार से आच्छादित होकर प्राणी अन्धा हो जाता है - उसे भले बुरे का तनिक भी ज्ञान नहीं रहता। ये बेचारे दोनों निर्दोष हैं। कर्म के दोषों से दूषित बने हुए दीन प्राणी पर दया करना उत्तम पुरुषों का परम कर्तव्य है। महाराज ! आप जानते हैं कि कर्म का दोष अत्यन्त बलवान है। मैं समुद्र में गिरा, मगर द्वारा खाया गया और मनुष्य होते हुए भी पक्षी योनि का अनुभव किया इत्यादि सब मेरे पूर्व कर्मों का ही फल है। इसमें इस बेचारे सेठ कुबेरदत्त का अथवा मालिन का दोष ही क्या है ?

"इन्द्र चन्द्र, नागेन्द्र नर, तपसी, ऋषि, मुनीन्द्र।
किये कर्म भोगें सभी जन, छूटे नहीं नरेन्द्र ॥
किस पर क्रोध निकालिए, किस पर कीजे रोष।
किसका दोष बताइए, कर्मों के यह सब दोष ॥
नहीं कोउ दुख सुख देत है, देत करम झकझोर।
उरझत सुरझत आपही, ध्वजा पवन के जोर ॥"

यह सुनकर राजा नरवर्मा शान्त हो गया। इतने ही में राजा के नौकर उस पापी कुबेरदत्त को पकड़कर वहाँ ले आये। पापी कुबेरदत्त ने महाराज के सामने अपने सब अपराध मंजूर कर लिये और राजा से क्षमा प्रार्थना की।

उत्तमकुमार के समझाने पर शान्त हो जाने के कारण राजा ने कुबेरदत्त को बहुत ही भला बुरा कहा और अन्त में उन दोनों अपराधियों के, प्राणदण्ड की आज्ञा रद कर दी। उसने कुबेरदत्त की सब सम्पत्ति जप्त करके उसे अपने देश से निकलवा दिया और उस मालिन को भी नगर से निकाल दी। इस प्रकार दयालु राजकुमार ने अपने दया धर्म रूपी गुणों से उन दोनों अपराधियों को मुक्त करवाकर अभयदान दिया। राजकुमार की इस उदारता के कारण सारे मोटपल्ली नगर में उसकी अत्यन्त यश की कीर्ति फैल गयी, और सारी प्रजा उसका यशोगान करने लगी।"

अभयदान इस जगत में दिव्य वस्तु है। इसके प्रभाव से भरतक्षेत्र में अनेक धर्म वीरों ने अपनी कीर्ति ध्वजा फहराई है और अपने पवित्र नाम को इस विश्व में चिरस्थाई बनाकर वे शाश्वत सुख के भोक्ता बने हैं। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को निरन्तर अभयदान का महत्पुण्य उपार्जन करने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

बाईसवाँ परिच्छेद

चतुर चौकड़ी

पुण्य का प्रबल प्रवाह पापी को कैसी-कैसी उत्कृष्ट दशाओं में पहुँचा देता है ! जो दुःख के महासागर में पड़ा हुआ पामर जीव निराश हो गया हो, जिसे अपनी जीवन की उन्नति की जरा भी आशा न हो - और आमरण दुःख भोगना है; जिसने ऐसा निश्चय कर लिया हो वह प्राणी भी जब उसके पुण्यों का उदय होता है तब एक अद्भुत और अभिनव आनन्द का अनुभव करता है। जो जंगल में भटकता हो, वह राज महलों में विलास करने लगता है। जो दरिद्रता के चुंगल में फँसा हो, वह कुबेर के समान धनपति हो जाता है। जो नंगे पाँवों पैदल घूमता हो वह हाथी, घोड़े, रथ, पालकी, आदि का स्वामी बन जाता है, और जो स्त्री सुख से वंचित हो वह रूप यौवन सम्पन्ना सुन्दरियों का पति बन जाता है।

भाग्यवान् उत्तमकुमार एक ऐसा ही पुण्यशाली पुरुष था। उसके पुण्यों का उदय उदयाचल पर विराजमान था। वह मोटपल्ली नगर के राजसिंहासन पर सुशोभित था। महाराजा नरवर्मा ने उसे अपने राज्य का सर्वेसर्वा मालिक बना दिया था। मोटपल्ली नगर की प्रजा का वह मुख्य नायक बन गया था। अब तिलोत्तमा राजकुमारी नहीं थी बल्कि महारानी बन गई थी।

सेठ महेश्वरदत्त ने राजा की और अपनी प्रतिज्ञा पालन करने के लिए अपनी कन्या सहस्त्रकला उत्तमकुमार को व्याह दी थी। राजकुमार द्वारा पहिले ही

से अंगीकार की हुई वेश्या अनंगसेना ने उसके साथ विवाह कर लिया। इस प्रकार मदालसा, तिलोत्तमा, अनंगसेना और सहस्त्रकला इन चारों की चतुर चौकड़ी उत्तमकुमार के अन्तःपुर में निवास करती थी। वह इन चार चतुराओं के साथ रहता हुआ चतुर नायक उत्तमकुमार सांसारिक सुखों का भली भाँति उपयोग करता था। इस पर भी अपने धर्म का खास तौर से पालन करता था। अर्थात् धर्म, अर्थ और काम इन तीनों का रात दिन अच्छी तरह सम्पादन करता था। उत्तमकुमार की दिनचर्या नियमित थी। वह नित्य, आवश्यक क्रिया से निवृत्त होकर जिन पूजा करता और शुद्ध अन्तःकरण से गुरुभक्ति करता था। उसकी चारों पत्नियाँ पति सेवा में तत्पर रहा करतीं और श्राविकाधर्म के अनुकूल चलकर अपने स्त्री जीवन को सफल करती थी। कई बार वह धर्मवीर कुमार अपनी चारों पत्नियों को धर्म कथाएँ सुनाया करता था। कई बार ये चारों, रानियाँ जैन सती मण्डल के गीत गाकर उत्तमकुमार के हृदय को प्रसन्न करती थीं। कभी-कभी वे तरह-तरह की गूढ़ पहेलियाँ आपस में पूछ कर साहित्य-सुधा का पान करती थीं। समय समय पर शृङ्गार, नीति और वैराग्य पर वाद-विवाद करके यह पत्निमण्डल आनन्द का अनुभव किया करता था और कभी पवित्रता के पोषक वैराग्य रस का अनुपम आश्वादन करके वे सब उत्तम भावनाओं को हृदयंगम करते थे।

यद्यपि चारों रमणियाँ अलग-अलग जाति-कुल और स्वभाव की थीं, तथापि जैसे भिन्न भिन्न नदियों का प्रवाह समुद्र को अनुकूल होता है उसी तरह उनका स्वभाव उत्तमकुमार के लिए अनुकूल था। उन सभी में तिलोत्तमा को पटरानी का पद दिया गया था। परन्तु तिलोत्तमा अपने नम्र स्वभाव के कारण मदालसा का आदर खूब करती थी, और उसे ही महाराणी के रूप में मानती थी। अनङ्गसेना अपनी कला से राजकुमार का मन अपनी मुट्ठी में रखती थी, किन्तु अपनी दूसरी बहिनों से ईर्ष्या भाव नहीं करती थी। सहस्त्रकला, शान्त स्वभाव की होने के कारण सभी से बहिन का सा वर्ताव करती थी। इस तरह चारों

की यह चतुर चोकड़ी परस्पर प्रेम मग्न हो, पुण्य-मूर्ति उत्तमकुमार के पवित्र प्रेम की सच्ची अधिकारिणी बन गयी थीं।

महाराजा नरवर्मा और सेठ महेश्वरदत्त अपनी-अपनी सम्पत्ति उत्तमकुमार को सौंपकर दोनों धर्म की आराधना करने लगे। वे परमार्थ दृष्टि से आत्मस्वरूप को समझकर, आत्मा और परमात्मा की एक्यता अनुभव करते हुए अखण्ड सुख पाने के कार्य में तत्पर हो गये। "स्वार्थ दृष्टि से यदि देखा जाय तो इसलोक में कुछ सुख है ही नहीं। जगत् के प्राणीमात्र का सुख कैसे बढ़े, आत्मसुख प्राप्त करते हुए दूसरे को सुख कैसे हो ?" इत्यादि विषय पर वे निरन्तर विचार करते रहते थे। इन विचारों को सफल बनाने के साधन प्राप्त करके उसके प्रयत्न में रहते और उस प्रयत्न से मन में सन्तोष धारण करने को ही जीवन की सफलता मानते थे। अन्त में वे श्रावक जीवन को सार्थक करते हुए अनन्त संसार से पार हो गये।

उत्तमकुमार अपने पुण्य के प्रभाव से मोटपल्ली नगर का राजा बना था। वह धर्म और नीति पूर्वक अपनी प्रजा का पालन करता था। अपनी राज्य लक्ष्मी का सातों क्षेत्रों में उपयोग करता और इसी में अपना जीवन सफल मानता था। यही कारण था कि उसके राज्य में प्रजा की धार्मिक और सांसारिक उन्नति विशेष देखी जाती थी। बच्चे से लगाकर बूढ़े तक सारी प्रजा, धर्म तथा नीति मार्ग पर चलने वाली, राजभक्त, धार्मिक' और आत्मिक सुख चाहनेवाली थी। बालक, मंडली, प्रजा, विद्या और कलाओं का सम्पादन करने में तत्पर रहती थी, युवक लोग धर्म तथा नीति के अनुसार चलते हुए उद्योग और कला को आश्रय देते तथा वृद्ध प्रजा आत्मिक सुख अनुभव करने के लिए उत्सुक रहती थी।

यद्यपि राजा उत्तमकुमार चार चतुर स्त्रियों की चौकड़ी में रातदिन रहता था। वह चार रमणियों के शृङ्गार रस का पान करता था और सब प्रकार के साहित्य का प्रेमी था तथापि उसकी मनोवृत्ति धर्म और वैराग्य की ओर अधिक दिखाई पड़ती थी। उसके हृदय में सदा पवित्र भावनाएँ उत्पन्न हुआ करती थीं। वह अनेक बार अपनी चतुर स्त्रियों के सामने अपने पवित्र विचार इस प्रकार प्रगट किया

करता था-

"तुम अपने मन में इस जगत के सांसारिक विचारों को स्थान कभी मत देना। वर्ना तुम्हारे अंत:करण में अज्ञानरूपी घोर अंधकार छा जायगा। जब तक हृदय में ज्ञान और सद्विचार का प्रकाश न होगा तब तक संकल्प विकल्प के घोड़ों का सवार यह जीव पूर्ण संतोष नहीं प्राप्त कर सकता। जब हृदय का अंधकार दूर हो जाता है तब प्राणी ज्ञान रस के शुद्ध प्रेम से स्नान करता है, और तभी वह स्वयं कौन है ? यह बात उसे स्पष्ट रूप से समझ में आ जाती है। इसके बाद वह आत्म-वस्तु का यथार्थ स्वरूप समझ जाता है और उसके सामने एक भी प्रश्न नहीं रह जाता। प्रत्येक बात आप ही आप स्पष्ट हो जाती है कुछ भी जानने योग्य नहीं रहता। स्वयम् ज्ञानी बन जाता है और ज्ञानदृष्टि से इस जगत के सब भावों को देखता तथा अनुभव करता है।"

अपने पति के ऐसे आत्मिक विचार जानकर चारों स्त्रियाँ प्रसन्न होतीं, और अपने जीवन को उनके कहे अनुसार बनाने का प्रयत्न करतीं थीं।

महाराजा उत्तमकुमार की चारों पत्नियाँ आपस में हिलमिल कर रहतीं तथा विषय सुख एवम् धर्म ज्ञान का अनुभव करती हुई अपने श्राविका जीवन को सार्थक करने वाले सन्मार्ग को ग्रहण कर, पति की आज्ञा के अनुसार आचरण करती थीं। उनका व्यवहार प्रशंसनीय था। मोटपल्ली नगर की प्रजा इन चारों रानियों को "चतुर चौकड़ी" के नाम से पुकारा करती थी।

तेईसवाँ परिच्छेद

शत्रु, मित्र बना

एक विकराल पुरुष बड़ी भारी सभा में बैठा है । वह साठ हजार राक्षसों का मालिक है । उसके आस-पास भयङ्कर राक्षस हथियार ऊँचे उठाये हुए खड़े थे । उसकी सभा में संसार विनाश, युद्ध, लूट, चोरी, व्यभिचार, अन्तराय और आक्रमण की बातें हो रही हैं । क्रुरकार्य करने वाले, कालकूट राक्षसों के वहाँ व्याख्यान हो रहे हैं । धर्मज्ञान, योग, त्याग, दान, उपकार और सहायता करने वालों की निन्दा के प्रस्ताव पास किये जा रहे हैं । कई घोड़े के मुख वाले, गधे के मुख वाले, व्याघ्र मुख वाले, गरुड़ मुख वाले, भयङ्कर मुख वाले, काले और लाल मुख वाले पुरुष उसकी सभा में ऊँचे सिंहासन पर बैठे हुए हैं ।

उस विकराल पुरुष ने अपने एक राक्षस सेवक को हुक्म दिया - "जाओ ! किसी ज्योतिषी को शीघ्र यहाँ बुला लाओ । मेरी पुत्री को चुरानेवाला कौन है ? किसके सिर पर मौत मंडरा रही है ? कौन मेरे हाथों अपने प्राण खोना चाहता है ?

आज्ञा होते ही एक राक्षस ने निवेदन किया - "राजराजेश्वर ! दैव योग से कोई ज्योतिषी स्वयं राजद्वार पर उपस्थित है । यदि आप आज्ञा दें तो उसे भीतर हाजिर करूँ ?" सेवक का यह वचन सुनते ही राक्षस पति ने प्रसन्न होकर कहा - "शीघ्र ही उसे अन्दर ले आओ ।"

पाठकों इस प्रकरण के आरम्भ में ही जिज्ञासा उत्पन्न हुई होगी - इसलिए उसे यहाँ स्पष्ट कर देना ठीक है । जो विकराल राक्षस सभा इकट्ठी किये बैठा है, वह लंका का राजा भ्रमर केतु है । वह हमारे चरित्र नायक उत्तमकुमार की पहली पत्नी मदालसा का पिता है । उसने अपनी पुत्री मदालसा को समुद्र गिरि के एक कुए में महल बनवाकर एक वृद्धा दासी की देखरेख में रखी थी । वहाँ से उत्तमकुमार उसके साथे गान्धर्व-विधि से विवाह करके, मोटपल्ली नगर में ले आया

है । पश्चात् जब भ्रमरकेतु को पुत्री के हरण की बात मालूम हुइ तो उसे अत्यन्त क्रोध आया । उसने मदालसा को बहुत ढूँढा, तलाश भी कराई, परन्तु जब उसका कहीं भी पता नहीं चला तब अन्त में उसने ज्योतिषी को बुलाकर उस विषय में पूछने का निश्चय किया और इसीलिए वह सभा इकट्ठी किये बैठा है । इतने ही में दैव योग से वहाँ एक ज्योतिषी बिना बुलाये ही आ निकला, और राक्षस पति से उसकी भेंट हुई ।

ज्योतिषी को देखकर राक्षसराज ने उसे एक उत्तम आसन पर बिठाया । और उससे पूछा - "ज्योतिषीजी ! बताइये, मेरी पुत्री मदालसा कहाँ है ?" ज्योतिषी ने अपने ज्ञान बल से विचार कर कहा - "राक्षसपतिजी ! आपकी पुत्री मदालसा की सारी कथा इस प्रकार है सुनिए । वाराणसी नगरी का राजपुत्र, उत्तमकुमार आपकी पुत्री मदालसा को व्याह कर ले गया है । और वही आपके खजाने में से पाँच रत्न भी ले गया है । इस समय वह मोटपल्ली नगर का राजा हो चुका है । पुण्य के प्रभाव से बड़े बड़े राजा और विद्याधर तक उसकी चरण सेवा करते हैं । महेश्वर दत्त नामक एक करोड़ पति ने अपनी पुत्री और अपनी सारी सम्पत्ति उसको अर्पण कर दी है । उसके पुण्य का प्रभाव उस देश में सर्वत्र फैल रहा है ।"

ज्योतिषी की यह बात सुनकर राक्षस पति को बहुत ही आश्चर्य हुआ । उसके मन में भवितव्यता की बात पर श्रद्धा उत्पन्न हो गयी । कहाँ समुद्र गिरि, कहाँ कुएँ के भीतर का महल, और कहाँ देवताओं के लिए अगम्य कूप द्वार ! इतना होने पर भी वहां पर राजकुमार पहुँच गया, और मदालसा को हरण कर ले गया ! इस प्रकार विचार करता हुआ, भ्रमरकेतु दिग्मूढ़ सा हो गया । मेरी कन्या को कोई भी मनुष्य देहधारी ब्याह नहीं सकता उसका यह विचार अब बदल गया । इसके हृदय में क्षणभर के लिए बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई । अन्त में उसने विचार किया - "जो कुछ होना था, सो हो गया । अब यदि मैं मोटपल्ली नगर में जाकर उससे युद्ध भी करूँ, तो मुझे विजय मिलने की आशा कम है । वह चतुर राजकुमार तंत्र-मंत्र में प्रविण है । उसने अपने बाहु बल से मुझे एकबार परास्त किया था । अब तो वह और

भी अधिक बलवान हो गया होगा। क्योंकि मेरे पाँचो दिव्य रत्न उसके पास हैं, उसके चले जाने से मेरा जीवन निराश हो गया है। वह राजकुमार मुझसे कदापि हार नहीं सकता। साथही वह अब मेरा दामाद भी बन गया है। उस पराक्रमी दामाद को मारकर अपनी पुत्री को विधवा करना, यह नीति तथा लोक विरुद्ध कार्य है। इसलिए, अब तो मुझे वहाँ जाकर उससे मिलना ही ठीक है।"

यह सोचकर लंकापति भ्रमरकेतु ने अपने हृदय का क्रोध दूर कर दिया। उस ज्योतिषी को खूब इनाम देकर बिदा किया। ज्योतिषी के चले जाने पर भ्रमरकेतु मोटपल्ली जाने के लिए तैयार हुआ। यद्यपि उसके मंत्री उसकी इस इच्छा के विरुद्ध थे तथापि उस चतुर भ्रमरकेतु ने उनकी एक भी नहीं मानी, और स्वयं अपनी पुत्री और जँवाई से मिलने के लिए मोटपल्ली नगर के लिए रवाना हुआ। थोड़े ही दिनो में वह वहाँ जा पहुँचा।

राक्षस पति भ्रमरकेतु अपने जामाता उत्तमकुमार से बड़े प्रेम पूर्वक मिले। उसने अभिमान त्यागकर राजकुमार से क्षमा माँगी। तदनन्तर वह अपनी पुत्री से मिला। पिता और पुत्री दोनों ही वात्सल्य प्रेम में मग्न हो गये। मदालसा और भ्रमरकेतु ने आपस में क्षमा माँगी। अपने जामाता की यश-कीर्ति श्रवण कर राक्षस पति ने प्रसन्न हो, अपना लंका का सारा राज्य उत्तमकुमार को सौंप दिया। बाद में भ्रमरकेतु अपने जामाता की आज्ञा ले, लंका की ओर चल दिया।

पुण्य कार्यों का प्रभाव कितना अच्छा होता है? लंकापति भ्रमरकेतु जो अपनी पुत्री तथा दिव्य पाँच रत्नों के हरण से उत्तमकुमार का भयङ्कर शत्रु बन गया था, - वही अब उसका मित्र बन गया। उसने प्रसन्नता पूर्वक उत्तमकुमार की आज्ञा अपने मस्तक पर चढ़ा, अपना राज्य तक उसे दे दिया। यह सब पुण्य ही का प्रभाव है। पुण्यरूपी सुधा-सागर में स्नान करने वाले प्राणी सदा अमर हो जाते हैं। उन पर भयङ्कर शस्त्र, विघ्न बाधाएँ, और मारण-प्रयोग काम नहीं करते। उनके शत्रु मित्र बन जाते है, विष अमृत हो जाता है। अग्नि शीतल हो जाती है। जल स्थल बन जाता है और स्थल जल हो जाता है। पुण्य के प्रबल योग से जो कार्य सफल होते

हैं वे किसी दूसरे योग से नहीं हो सकते। इस संसार में पुण्य की ही जय होती है और पुण्य से यश होता है।

चौवीसवाँ परिच्छेद

पुत्र स्मरण

वाराणसी नगरी का महाराजा मकरध्वज, अपनी चन्द्रशाला में बैठा हुआ चिन्ता कर रहा है। उसके मन में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प उठा करते हैं। उसके मुख मण्डल पर शोक की छाया निरन्तर बनी रहती है। इसी समय उसका मुख्य मंत्री किसी राजकाज के लिए वहाँ आ पहुँचा। द्वारपाल ने मंत्री के आगमन की सूचना दी - महाराज ने उसे भीतर आने की आज्ञा दी। मंत्री ने आकर राजा को प्रणाम किया, परन्तु महाराजा के दुःख पूर्ण मुख को देखकर विचार में पड़ गया। कुछ समय तक जब महाराज शब्द भी नहीं बोले तब मंत्री के मन में विशेष चिंता पैदा हुई। मंत्री ने नम्रता पूर्वक निवेदन किया - "स्वामिन्! आपका मुँह आज चिंतातुर क्यों दिखाई पड़ रहा है? आप सत्ताधीश तथा एक विशाल राज्य के मालिक हो, आपका हुक्म मानने के लिए वाराणसी राज्य की सारी प्रजा तैयार है; फिर आप किस बात की चिंता कर रहे हैं?

मंत्री के मुख से यह वचन श्रवण कर महाराजा, मकरध्वज ने कहा - "मंत्रीवर्य! मेरी चिंता का कारण अन्य कुछ भी नहीं; आज मुझे अपने प्राण प्यारे पुत्र उत्तमकुमार की याद आ गयी है। बहुत समय बीत गया मुझे अपने प्यारे पुत्र की मनोहर सूरत नहीं दिखाई दी! वह मेरा विद्वान पुत्र कहाँ गया होगा? उसकी क्या दशा हुई होगी! इत्यादि चिंताएँ मेरे मन को रातदिन जलाया करती हैं। आज रात को स्वप्न में मैंने उत्तमकुमार को चार पुष्पवती लताओं के मंडप में आनन्द पूर्वक बैठा देखा है। नवीन पुष्पों से सुशोभित चार लताओं के बीच राजकुमार क्रीडा कर रहा था और सांसारिक आनन्द का अनुभव कर रहा था। मंत्रीजी! इस

स्वप्न को देखकर मुझे उत्तमकुमार से मिलने की अत्यन्त अभिलाषा हो रही है। मेरे मन में अपने पुत्र को देखकर हृदय को शान्त करने की प्रबल इच्छा हो रही है।"

महाराजा मकरध्वज की ऐसी चिन्ता जनक दीन वाणी श्रवणकर मंत्री ने हाथ जोड़कर कहा - "स्वामिन् ! आप किसी भी तरह की चिंता न कीजिए। यह आपका स्वप्न शुभ-सूचक है। राजकुमार कहीं आनन्द पूर्वक होंगे। नवीन पुष्पों से सुशोभित चार बेलों के बिच में जो आपने उन्हें क्रीडा करते देखा है - इसका यह अर्थ है कि, राजकुमार कहीं चार सद्‌गुणी महाराणियों के साथ आनन्द का अनुभव करते होंगे। प्रभो ! आप मेरे वचनों पर विश्वास कीजिए। मैंने कई विद्वानों के मुँह से 'स्वप्न शास्त्र' सुना है। आपका यह स्वप्न अत्यन्त शुभ-सूचक है। मैं आपको निश्चय पूर्वक कहता हूँ कि राजपुत्र उत्तमकुमार किसी बड़े राज्य के राजा हुए है। उनके अन्तःपुर में चार राणियाँ हैं। वे चारों विदुषी महिलाओं के सहवास में रहकर सुख भोग रहे हैं।"

मंत्री के यह प्रिय वचन श्रवणकर, महाराजा मकरध्वज का हृदय कुछ कुछ चिंता रहित हो गया। उसके शोकाकुल हृदय को कुछ समय के लिए तसल्ली हो गयी। राजा ने उत्साह पूर्वक कहा - "मंत्रीराज ! आपकी अमृत के समान वाणी ने मेरे चित्त को बड़ी शान्ति पहुँचाई है। परन्तु राजकुमार को देखने की मेरी प्रबल इच्छा शान्त नहीं होती। जब मैं उसे अपनी आँखो से देख लूँगा तभी मेरे मन को सच्ची शान्ति मिलेगी। वह राजकुमार कहां होगा और वह कहाँ का राजा बना होगा ? इसका पता अब शीघ्र ही लगाना चाहिए यदि कोई चतुर मनुष्य ढूँढने वाला मिल सके तो उसे समस्त भरतक्षेत्र में उत्तमकुमार की खोज के लिए भेजना चाहिए।

महाराज के यह वचन सुनकर मंत्री ने उत्साह पूर्वक कहा - "राजराजेन्द्र ! मुझे एक बात याद आयी ! अपने दरबार में एक वेगवान नामक राजदूत है, वह खोज करने में अत्यन्त निपुण है। भरतक्षेत्र में चाहे जहां छिपा हुआ मनुष्य हो उसे वह ढूँढकर ला सकता है। उसमें शोधन कला का एक बड़ा ही गुण है। इस गुण

के कारण वह अपने राज्य में प्रसिद्ध है। इसी कारण वह अपने राज्य के लिए अत्यन्त उपयोगी मनुष्य है।"

यह बात सुनते ही राजा ने प्रसन्न होकर उस दूत को तत्काल बुलाने की आज्ञा दी। आज्ञा होते ही उसे राजा की सेवा में उपस्थित किया गया। महाराज ने उससे कहा - "भाई ! तुम खोज करने में अत्यन्त प्रवीण हो, इसलिए सारे भरतक्षेत्र में घूम फिरकर राजपुत्र उत्तमकुमार का पता लगाओ। इस कार्य के करने पर मैं तुम पर बहुत खुश होऊँगा और तुम्हें तुम्हारे इस कार्य के बदले में काफी ईनाम दूँगा।"

वाराणसी पति महाराजा मकरध्वज के यह वचन सुनकर वेगवान ने उत्साह पूर्वक कहा - "सरकार ! मैं आपकी कृपा से यह कार्य अवश्य कर सकूँगा। भरत के प्रत्येक गुप्त और प्रकट स्थानों को देखकर राजकुमार का पता लगाऊँगा। मैं आपका सेवक हूँ - स्वामी का कार्य करना हि सेवक का धर्म है। आप गरीबों के प्रति विशेष कृपालु हैं, इसलिए मुझ जैसे ताबेदारों को अपना कर्तव्य पालन करने में विशेष आनन्द आता है।"

दूत के यह वचन श्रवणकर, राजा मकरध्वज को पूरा विश्वास हो गया। पुत्र को शीघ्र देखने की उसे आशा हो गयी। राजदूत महाराज को प्रणाम कर अपना कर्तव्य पालन करने के लिए तैयार हो गया। चलते समय महाराज ने उसकी पीठ पर हाथ रखा। वह खर्च के लिए इच्छानुसार रुपये-पैसे लेकर दरबार से चल दिया।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

गोपाचल में युद्ध

चारों ओर कोलाहल मचा हुआ था । रणवीर योद्धा अपने सिंहासन से गोपाचल की पर्वत उपत्यकाओं को गुँजा रहे थे । प्रति ध्वनि के गर्जन से आकाश ध्वनित हो रहा था । कई योद्धा रण संग्राम का उत्साह प्रदर्शित कर रहे थे । कई वीरता दिखाने का अवसर आया देखकर हृदय में आनन्द मना रहे थे । कोई अपने मालिक की सेवा सफल करने का समय देखकर मन में बहुत ही आनन्दित होते थे । कई अपने स्वामी के आदेश को सफल करने की इच्छा से प्राणार्पण करने के लिए रण-भूमि में तैयार खड़े थे ।

अन्त में भयङ्कर युद्ध छिड़ गया । योद्धा लोग शस्त्र, अस्त्र और तलवारें लिये रणाङ्गण में कूद पड़े । एक ओर जुझाऊ बाजे बजने लगे । शूरवीरों का सिंहनाद होने लगा । शस्त्रास्त्रों से घायल योद्धाओं के रुण्ड नाचने लगे । मांस भक्षी पक्षी मांस की लोलुपता से चारों ओर मँडराने लगे । रक्त से सारी रणभूमि लथ-पत हो गयी । धड़ से अलग हुए मस्तक रणभूमि की शोभा को बढ़ाने लगे । बाणवृष्टि से चारों ओर अंधकार सा हो गया । भाट-चारणों ने वीर रस के निम्नांकित काव्य कहने आरम्भ किये -

छूटे यहाँ बहु बाण, कायर भगे ले प्राण ।
गिरने लगे बहु रुण्ड, कटने लगे नर मुण्ड ॥
होने लगा रण घोर, मच गया चहुँ दिसि शोर ।
थीं चमकतीं तलवार, मच गई मारामार ॥
बर्छी चलीं बन्दूक, लगते निशान अचूक ।
रणशूर हो अति युद्ध, करने लगे सब युद्ध ॥
ये वीर युद्ध प्रचण्ड, हैं काटते रिपु मुण्ड ।
हैं लिये कर को दण्ड, लड़ने लगे नर-रुण्ड ॥

ऐसे चले तहँ बान, दिखते नहीं हैं भानु ।
हटते नहीं है शूर, सब प्राण-प्रण के शूर ॥
बाजे बजत जुझाउ, क्षत्री अड़े तेहि ठाँउ ।
बन गये रण-मतवाल, हैं काल के भी काल ॥
सब धर्म अपना मान, रख क्षत्रियों की आन ।
जूझे समर में आय, अरि शीश पर मँडराय ॥

यह वीररस पूर्ण काव्य सुनकर शूरवीरों की छातियाँ फूल उठीं । इसी समय एक पराक्रमी वीर ने आगे बढ़कर अपने शत्रु को पकड़ लिया । अपने मालिक को शत्रु के पंजे में फँसा देखकर सैनिक अपने प्राण लेकर भागने लगे । सारी सेना में हाहाकार मच गया ।

उस वीर द्वारा पकड़ा हुआ वह शत्रु बड़ा ही लज्जित हुआ । वह उस वीर के चरणों में गिर पड़ा । दयालु हृदय वीर ने अपने शत्रु को झुका देखकर उसे छोड़ दिया और अभयदान दिया । इसी समय उस पराजित पुरुष के हृदय में वैराग्य-भावना प्रकट हो आयी और उसने उसी समय अपना गोपाचल का राज्य उस विजेता को देकर आर्हत दीक्षा लेने की तैयारी की । उस वीर पुरुष ने उसे गोपाचल पर राज्य करने का बहुत ही आग्रह किया, परन्तु वह विरक्त पुरुष अपने विचार से विचलित नहीं हुआ । जब उस वीर ने उसे राज्य करने के लिए बहुत ही आग्रह किया तब उसने कहा -

मान मलिन मेरा हुआ, रहिके राज मझार ।
माना सुखदाता जिसे, वह सब दुःख दातार ॥
सम्पति में आपद् बसे, सुख में दुःख का वास ।
रोग भोग में बसत है, देह मरण आवास ॥
इस सांसारिक जीव को, बन्धन है धन दार ।
मूर्ख सुख माने इसे, मधु लिपटी तलवार ॥
मान किसी का ना रहा, इस संसार मझार ।

विजयी नर तो हो सके, नृप यों करत विचार ॥

इस काव्य को सुनकर उस वीर पुरुष ने अपने मन में सोचा कि, इसे सच्चा-वैराग्य हुआ है । इसलिए अब इसे विशेष आग्रह करके संसार के गड्ढे में डालना ठीक नहीं है । यह सोचकर दूरदर्शी वीर पुरुष ने विशेष आग्रह नहीं किया । उस विरक्त पुरुष ने अपनी सम्पत्ति इस वीर के हाथ सौंप दी और वह इस संसार रूपी महासागर से पार होने के लिए नौका के समान दीक्षा लेकर कहीं चला गया ।

पाठक ! इस अद्भुत घटना को जानने के लिए आप उत्सुक हो गये होंगे । सुनिए, वाराणसी पति राजा मकरध्वज को अपने पुत्र का स्मरण हो आया था, इसलिए उसने एक वेगवान नामक दूत उत्तमकुमार की खोज में भेजा था । वह दूत सारे भरतक्षेत्र में घूमता हुआ मोटपल्ली नगर में पहुँचा । वहाँ वह उत्तमकुमार की खबर सुनकर बहुत ही खुश हुआ । उसने उत्तमकुमार से मिलकर उसके पिता राजा मकरध्वज का पत्र उसके हाथ में दिया । इस पत्र में, पिता ने पुत्र के प्रति बहुत प्रेम प्रदर्शित किया था । उसमें एक स्नेह-सूचक कविता भी लिखी हुई थी ।

क्रोध न मैंने था किया, कुवचन कहा न कोय ।
बिना कहे तूं चल दिया, यह पछतावा होय ॥
राज नीति ज्ञाता कुंवर, तुझ पर था सब खेल ।
निराधार तज चल दिया, हमको दुख में ठेल ॥

इस पत्र को पढ़ते ही उत्तमकुमार के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा । उसके कोमल हृदयपर पितृ भक्ति की भावना प्रकट हो गयी । आगे पत्र पढ़ा तो उसमें यह कविता और लिखी थी ।

कुँवर ! बाँचकर पत्र यह, ढील न करना भूल ॥
पानी पीना मत वहाँ, यही बात है मूल ॥
तुज बिन सूना देश यह, तुझ बिन सूना राज ।
तुझ बिन सूनी दृष्टि है, आकर रख तूं लाज ॥
राज कार्य में तूं निपुण, तुज बिन कैसा राज ?

कुलदीपक, सिर मौर है, तूं सबका सिरताज ॥
जो चाहे मुझको सुखी, अरु चाहे कल्याण ।
तो जल्दी आन यहाँ, मिलें प्राण में प्राण ॥
भाग्यवंत तूं पुत्र है, विनयी अरु गुणवंत ।
मात पिता को त्याग कर, कैसे हुआ निश्चिंत ॥
ज्यादा क्या तुझको लिखूँ, तूं समजत सब बात ।
थोड़े में समझो बहुत, आन मिलो प्रिय तात ॥

इस कविता को पढ़ते पढ़ते उत्तमकुमार के नेत्रों से आँसू बह चले । वह तत्काल अपने तीर्थरूपी माता पिता से मिलने के लिए व्याकुल हो उठा । उसके दुखी हृदय में विचार हुआ कि - "मैं अपने माता पिता की आज्ञा लिये बिना ही अचानक इधर चला आया, यह मैंने बड़ा ही दुस्साहस का काम किया है । अतः मैं अपने जन्म देनेवाले माता पिता के लिए दुःख रूप हो गया हूँ । अपने महान् उपकारी माता पिता के लिए दुःखरूप होनेवाली संतान को धिक्कार है । अब मुझे शीघ्र ही अपने पूज्य माता पिता के दर्शन कर, उनके हृदय को संतोष देकर, अपने पुत्र जीवन को सफल करना चाहिए ।" यह सोचकर उत्तमकुमार एक बड़ी भारी सेना लिए वाराणसी राज्य की ओर प्रस्थान करने लगा ।

उत्तमकुमार अपनी बड़ी सेना साथ लिये चित्रकूट पर्वत के पास पहुँचा । वहां के राजा महीसेन ने सुना कि - "मोटपल्ली नगर का राजा उत्तमकुमार एक भारी सेना लिये आ रहा है ।" यह सुनकर राजा महीसेन बड़े ठाठ बाठ से एक बड़ी भारी सेना लिये उसके सामने स्वागत के लिये गया । उसने उत्तमकुमार को प्रणाम करके कहा - "राजेन्द्र ! मैं बहुत समय से आपसे मिलने की राह देख रहा था । आज आपके पधारने की खबर सुनकर बड़ी प्रसन्नता से आगे मिलने आया हूँ । यह मेरा राज्य और सब सम्पत्ति आप स्वीकार करें और मुझे संयम-राज्य करने की आज्ञा दें । आप मुझे इस उपाधिरूप राज्य से मुक्त कीजिए, मैं आपका अत्यन्त आभार मानूँगा । मुझे आशा है आप कृपा करके, मेरे शेष जीवन को

सुधारने में सहायक होंगे।" राजा महीसेन की यह प्रार्थना सुनकर उत्तमकुमार के हृदय में भाव दया उत्पन्न हुई और उसने कुछ भी आनाकानी न करते हुए उसका राज्य अङ्गीकार कर लिया। उत्तमकुमार चित्रकूट के विशाल राज्य का स्वामी बना और राजा महीसेन दीक्षा लेकर कहीं चल दिया।

उत्तमकुमार वहां पर अपनी सत्ता कायम कर वाराणसी नगरी की ओर जाने लगा। उस मार्ग में गोपाचल राज्य आया। गोपाचल का राजा वीरसेन, उत्तमकुमार को बड़ी भारी सेना लिये आया देख उसके पास यह कविता एक दूत के हाथ लिख भेजी -

"युद्ध करन की आपमें, हो रजपूती शान।
जल्दी से आ जाइए यहाँ, होगा रण घमसान॥"

यह काव्य संदेश पढ़ कर उत्तमकुमार युद्ध के लिए उत्तेजित हो उठा। इतने ही में वह गोपाचल नरेश वीरसेन भी बड़ी भारी सेना लिये हुए युद्ध करने के लिए सामने आ पहुँचा।

ऊपर जो युद्ध का वर्णन दिया गया है, वह उत्तमकुमार और वीरसेन के युद्ध का वर्णन है। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में वीर शिरोमणि उत्तमकुमार के सैनिकों ने वीरसेन के सैनिकों को हरा कर भगा दिया। बाद में उत्तमकुमार ने राजा वीरसेन को पकड़ लिया। मान रहित होने पर वीरसेन के हृदय में वैराग्य भावना प्रकट हुई। इसलिए उसने अपना राज्य उत्तमकुमार को सौंप कर, संयम का राज्य ग्रहण किया।

धर्मवीर, उत्तमकुमार चित्रकूट और गोपाचल पर्वत के, दोनों राज्यों का मालिक बन कर वाराणसी नगरी में आ पहुँचा। महाराजा मकरध्वज को अपने पुत्र उत्तमकुमार के आने की सूचना पहिले ही से मिल गयी थी। अतएव पुत्र-वत्सल पिता बड़े ठाठ-बाठ से सेना सहित पुत्र को लेने के लिए आगे आया। उसने बड़ी धूम-धाम से अपने पुत्र का प्रवेशोत्सव किया और उस दिन सारे राज्य में अत्यन्त आनन्द मनाया गया। वाराणसी नगरी की राज भक्त प्रजा ने

अपने राजकुमार के शुभागमन के उपलक्ष्य में सारी नगरी को खूब सजायी । प्रत्येक घर के द्वारपर मंगल-तोरण लगाये और अग्रवेदिका पर मंगल-कलश स्थापित किये । विजयी उत्तमकुमार ने अपने माता-पिता के चरणों को स्पर्श कर चरण धूलि को मस्तक से लगाया । पुत्र-प्रेमी माता-पिता ने अपने प्यारे पुत्र को हृदय से लगा कर अत्यधिक आनन्द का अनुभव किया । उत्तमकुमार की चतुर चौकड़ी के नाम से प्रसिद्ध चारों बहुओं ने अपनी सासू के पैर छुए । सासू ने भी चारों को हृदय से लगा सौभाग्यवर्द्धक आशीर्वाद दिया ।

पुण्यशाली उत्तमकुमार के आगमन से हर्षित हो, राजा मकरध्वज ने अपने पुत्र को वाराणसी राज्य के राज्यासन पर बैठाया और स्वयं निवृत्ति मार्ग ग्रहण करने के लिए उत्सुक हुआ । अपने पूज्य पिता को आत्म-साधन करने का अधिकारी समझ कर, उत्तमकुमार ने वाराणसी राज्य की बागड़ोर अपने हाथ में ले ली । पुत्र को राज्यासन पर बिठा कर मकरध्वज राजा दीक्षा ले, आत्म-साधन करने लगा ।

प्रिय पाठक ! देखो, पुण्य का प्रभाव कैसा अनुपम है ? एक राज्य के महाराजा का राजपुत्र जो मन में क्षुभित होकर, अकेला जंगल में चला गया था, वह आज मोटपल्ली, चित्रकूट, गोपाचल और वाराणसी, इन चार राज्यों का स्वामी बना । चार चतुर स्त्रियों का पति हुआ, और अटूट सम्पत्ति का मालिक बना । यह केवल पुण्य का ही प्रभाव है । पुण्य के प्रभाव से उत्तमकुमार एक चक्रवर्ती राजा के समान ऐश्वर्य का उपभोग करने लगा । उसके अधिकार में चालीस लाख घोड़े, चालीस लाख रथ, और चार करोड़ पैदल सेना थी । चालीस करोड़ गाँवों की प्रजा उत्तमकुमार की आज्ञा मानती थी । यह सब उसके पुण्य की ही महिमा थी ।

यद्यपि उत्तमकुमार इतनी महान् सम्पत्ति तथा समृद्धि का स्वामी और प्रतापी था तथापि उसमें धार्मिक वृत्ति निरंतर बनी रहती थी । अहंकार का नामोनिशान नहीं था । ज्यों-ज्यों उसका ऐश्वर्य बढ़ता गया, त्यों-त्यों वह धार्मिक वृत्ति में भी उत्तरोत्तर बढ़ता गया । समृद्धिशाली चार राज्यों का अधिपति

होने के बाद उसने अनेक जैन-मन्दिर जगह-जगह बनवाये । अनेक तीर्थ यात्राएँ की। प्रजा के कर माफ कर दिये। सज्जनों का पोषण किया। जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाई । पुस्तकालयों की स्थापना की, धार्मिक-सम्मेलन किये और विविधपरोपकार कार्य किये । भरतक्षेत्र के महान् कवि लोग उत्तमकुमार के सद्‌गुणों का इस प्रकार वर्णन करते हैं -

चार राज्य-स्वामी हुए, उत्तम चरित नरिन्द ।
पूर्व पुण्य के उदय से, दिन दिन अधिकानंद ॥
चार अप्सरा तुल्य थीं, चारों चतुर सुजान ।
चारों नारि पतिव्रता, चारों मानें आन ॥
चालिस लख घोड़े जहाँ, इतने ही गज मौर ।
चालिस लख रथ हैं सजे, पैदल चार करोड ॥
चालिस कोटि ग्रामाधिपति, ऋद्धी का नहिं पार ।
चार राज्य भोगे सदा, दिन-दिन हो विस्तार ॥
जिनमन्दिर बनवाये बहु, कीन्हीं तीरथ जात्र ।
भार रूप कर, करि क्षमा, पोषण किये सुपात्र ॥
जिन प्रतिमाएँ स्थापित कर, पुस्तक भरे भँडार ।
धार्मिक वत्सल वह हुआ, कीन्हें पर उपकार ॥

उन दिनों इस कविता से उत्तमकुमार का यशोगान भरत के चारों कोनों में होता था । भरतक्षेत्र की आर्यप्रजा इस धर्मवीर के पवित्र चरित्र को श्रवण कर उसके पुण्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करती थी । उत्तमकुमार जिन धर्म का, परम प्रभावक बन कर आर्हत धर्म का प्रचार करने के लिए, तन, मन और धन से, प्रयत्न करता था। उसकी समस्त समृद्धि सातों क्षेत्र में लग कर उपयुक्त हो रही थी। नीति परायण उत्तमकुमार के जीवन का अनुकरण करने कि लिए भरतक्षेत्र के समस्त राजा लालायित रहते थे । ऐसा पवित्र जीवन ही संसारी मनुष्यों के लिए लाभदायी होता है।

छव्वीसवाँ परिच्छेद

पूर्वजन्म

चार विशाल राज्य और चार महारानियों का स्वामी उत्तमकुमार एक दिन प्रातःकाल नित्य के आवश्यक कार्यों से निपट कर आनन्द पूर्वक बैठा हुआ था । उसी समय बागवान ने आकर निवेदन किया - "सरकार ! अपने बाग में कोई केवली भगवान् आकर ठहरे हैं ।" अमृत के समान यह वचन श्रवण कर महाराजा ने उसे इस 'वधाई' के लिए खूब इनाम दिया । और स्वयं राज परिवार सहित उन महानुभाव की वंदना के लिए तैयार हुआ । बड़े आनन्द के साथ महाराजा उत्तमकुमार बगीचे में आया और उसने पंच अभिगम की रक्षा करते हुए केवली के निकट जा, वंदना की और यथा स्थान पर बैठ गया । सभी श्रोताओं के सामने महोपकारी केवली भगवान् इस प्रकार उपदेश देने लगे ।

"हे भव्य जीवो ! आप लोगों ने जो जैनधर्म प्राप्त किया है, उससे आपका जन्म सफल हुआ है । संसार सागर में गोते खाते हुए प्राणियों को बचाने के लिए यह धर्म उत्तम है । इस संसार में भ्रमण करते हुए प्राणियों को यह मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है । इसीलिए इसे चिन्तामणि के समान कहा गया है । इसमें भी श्रुत-शास्त्र का श्रवण बहुत ही दुर्लभ है । इसके श्रवण करने से मन के पाप नष्ट हो जाते हैं, और हृदय का आज्ञान दूर होने से, उसका अंतर्द्वार खुल जाता है । किसी समय शास्त्र श्रवण का सुयोग तो मिल जाता है परन्तु उसमें श्रद्धा उत्पन्न होना अत्यन्त कठिन है । बिना श्रद्धा उत्पन्न हुए कच्ची मिट्टी के घड़े के पानी की तरह प्रभु का उपदेश हृदय में नहीं रह सकता । यदि सत्कर्मों के योग से जिनवाणी पर श्रद्धा हो जाती है तो उसमें संयम रखने के लिए ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना कठिन हो जाता है । इसलिए प्रत्येक प्राणी को मनुष्य शरीर, श्रुत श्रवण, श्रद्धा और वीर्य स्फुरण इन चार पदार्थों को सरल रीति से प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए ।

हे भव्य जनो ! आप लोगों को निरन्तर स्मरण रखना चाहिए कि धर्म

के कार्य में नाना प्रकार की विघ्न-बाधाएँ आती रहतीं हैं। धर्म कार्य करने में जब प्रमाद आलस आदि दुर्गुण विघ्न करते हैं, तब इन्हें त्यागकर एकाग्र मन से आपको आर्हत धर्म की उपासना करनी चाहिए, और उसमें पूर्ण श्रद्धा करनी चाहिए। जो मनुष्य हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, ब्रह्मचर्य का भंग करता है, और परिग्रह का संचय करता है, वह दुर्गति से प्रेम करता है, ऐसा निश्चय समझना चाहिए। जो मनुष्य क्रोधादि चार मनोविकारों का त्याग करता है और इन्द्रियों पर अपना अधिकार रखता है, उसे जैन धर्म सुलभ हो जाता है। इस संसार में माता-पिता, पुत्र-पुत्री और स्त्री आदि जो सगे-सम्बन्धी हैं, वे सब मतलब के साथी हैं। जीव जब दुर्गति में पड़ता है तो इनमें से कोई भी उसे नहीं बचा सकता। सब स्वार्थ के सम्बन्धी है - सब का प्रेम स्वार्थपूर्ण है। जब उनका स्वार्थ नहीं बन पाता तब उसी समय प्रेम नष्ट हो जाता है। जो प्राणी "यह मेरी सम्पत्ति है, यह मेरा घर है, यह मेरा परिवार है।" इत्यादि ममता में फँसा रहता है, उसे मूर्ख समझना चाहिए। क्योंकि परलोक जाते समय कोई भी जीव के साथ नहीं जाता, अकेले जीव को ही जाना पड़ता है। इसलिए, इन सांसारिक उपाधियों का त्यागकर आप लोगों को धर्म की शरण लेनी चाहिए। धर्म के सिवाय प्राणी के लिए अन्य कोई भी सच्चा सहायक नहीं है।"

केवली भगवान् का यह उपदेश सुनकर बैठे हुए सभी सज्जन बहुत ही प्रसन्न हुए। उपदेश समाप्त होने के बाद महाराजा उत्तमकुमार ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की "भगवान्! कृपा कर मुझे बतलाइए कि, मैं समुद्र में क्यों पड़ा था? धीवर के घर क्यों कैसे रहा? वेश्या के घर तोता बनकर मुझे क्यों रहना पड़ा? और अन्त में मुझे यह महान् सम्पत्ति क्यों कैसे मिली?"

महाराज उत्तमकुमार के इन प्रश्नों को सुनकर केवली भगवान् ने मधुर एवम् गंभीर स्वर में कहा - "राजन्! कोई भी प्राणी किये हुए कर्मों के फल भोगे बिना छूट नहीं सकता। जैसे कर्म किये जाते हैं वैसा ही फल प्राप्त होता है। तुम्हारा पूर्व जन्म कैसा था - उसे ध्यान पूर्वक सुनो-

"हिमालय पर्वत की भूमि के विशाल प्रदेश में सुदत्त नामक एक सुन्दर गाँव है। उसमें धनधान्य से परिपूर्ण धनदत्त नामक बड़ा ही सम्पत्ति शाली गृहस्थ रहता था। उसके चार स्त्रियाँ थीं। उसने आरम्भ कर बहुत ही धन संचय किया किन्तु बाद में दैव योग से उसका सारा धन नाश हो गया। उसके ऐश्वर्य सम्पन्न घर में दरिद्रनारायण का वास हो गया। एक दिन ठण्ड के मौसिम में कोई चार मुनि शीत से काँपते हुए उसके घर आ पहुंचे। उन मुनियों को ठण्ड से काँपते-ठिठुरते देखकर उसने पूछा - "मुनिराज ! आपके शरीर के वस्त्र कहां गये ?" मुनियों ने कहा - "विहार करते हुए आते समय मार्ग में हमें चोरों ने लूट लिया हैं।" यह सुनकर धनदत्त के मन में बड़ी ही भावदया उत्पन्न हुई और स्वयं निर्धन होते हुए भी उसने अपने ओढ़ने के वस्त्र उन मुनियों को दे दिये। उस समय उसकी चार स्त्रियों ने उसे ऐसा करने की अनुमति दी थी। इस महापुण्य के फल से वह धनदत्त इस जन्म में उत्तमकुमार बना है और उन चार मुनियों को वस्त्र दान देने के कारण तुम्हें चार राज्यों की महान् सत्ता प्राप्त हुई है और साथ ही पाँच रत्न एवं बहुत सी धन सम्पत्ति प्राप्त हुई है। यह चार चतुर स्त्रियाँ भी तुम्हें उसी पुण्य के प्रभाव से प्राप्त हुई हैं। पहिले तुम्हें कभी किसी जन्म में मुनि के शरीर तथा वेष को देखकर ग्लानि पैदा हुई थी। उसी के फल स्वरूप तुम्हें मगर के पेट में तथा मछुओं के घर रहना पड़ा। आज से हजार जन्म पूर्व तुमने एक तोता पिंजरे में बन्द किया था, इसीलिए तुम्हें वेश्या के यहाँ तोता बनकर पींजरे में रहना पड़ा। अनंगसेना पूर्व जन्म में कुलीन स्त्री थी, उसकी एक प्यारी सखी शृङ्गार करके उसके घर आयी थी, उस समय उसने हँसी-मजाक में यह कह दिया था कि "आओ वेश्या बहिन" केवल इतना कहने से ही उसे अनंगसेना नामक वेश्या के रूप में जन्म लेना पड़ा है।"

केवली भगवान के मुँह से इस प्रकार अपना पूर्व वृतान्त सुनकर महाराज उत्तमकुमार तथा उसकी रानियों के हृदय में वैराग्य भावना उत्पन्न हो गयी। उसने उसी समय अपने समस्त राज वैभव की व्यवस्था कर संसार का त्याग करके अपनी चारों पत्नियों सहित केवली भगवान से दीक्षा ग्रहण कर

ली। इस प्रकार उत्तमकुमार ने अपना मानवजीवन सफल कर दिया। महात्मा उत्तमकुमार राजर्षि चारित्र रत्न का पालन करते हुए यथार्थ ज्ञान को उपार्जन कर अखण्ड शान्ति का अनुभव करने लगा। मन को शुद्ध करके, कभी नाश न होनेवाली परम तृप्ति को खोजने लगे - "जीवन किस प्रकार सार्थक किया जाय ? समय का सदुपयोग न करने से कैसी-कैसी भयङ्कर तकलीफें होती हैं ? शुद्ध विचार रखना प्रत्येक सांसारिक मनुष्य के लिए अनिवार्य बात है। आलस्य प्रमाद से होने वाली हानियाँ, विषयलोलुपता सभी के लिए त्याज्य है। भावशौच, शुभध्यान और संयम सभी के लिए सेवन करने योग्य हैं। कर्तव्य तथा प्राप्तव्य का स्वरूप इत्यादि उत्तम विषयों पर वह राजर्षि व्याख्यान देकर लोकोपकार करने लगे।

इस प्रकार अपना शेष जीवन सार्थक करके राजर्षि उत्तमकुमार चारित्र पालते हुए तपश्चर्या द्वारा कर्मों को क्षय कर, अन्त में अनशन व्रत ले स्वर्ग को सिधारें। वहाँ पर दैवी सुख भोगकर बाद में महा विदेह क्षेत्र में आकर फिर सिद्ध पद को प्राप्त करेंगे।

जिन्होंने आर्हत तत्त्व ज्ञान श्रवण कर संसार में रहते हुए भी अपने जीवन का महत्वपूर्ण भाग लोकोपकारी बनाया है, जिसने अपनी महान सम्पत्ति का सात क्षेत्रों में सदुपयोग किया है और जिसने कर्तव्य, ज्ञातव्य और प्राप्तव्य की अवधि को देखा है, ऐसे पूर्व कालीन तथा वर्तमान समय के जैन तत्त्वज्ञ महात्माओं ने, और धर्मवीर पुरुषों ने अन्त में इसी पवित्र मार्ग का अनुसरण किया है।

उपसंहार

प्रिय वाचक वृन्द ! आपने एक धर्मवीर महात्मा का यह जीवन चरित्र आदि से अन्त तक पढ़ा है। महाशय उत्तमकुमार की पुण्य महिमा आपकी दृष्टि के आगे आयी है। इस पर से आप दूरदर्शिता पूर्वक अपने आत्मा को देखना। कोई भी किया हुआ सत्कर्म कभी भी निष्फल नहीं होता। ठण्ड से ठिठुरे हुए मुनियों को पूर्व जन्म में वस्त्र दान करने वाले उत्तमकुमार ने कितना ऐश्वर्य प्राप्त किया ? इस पर जरा मनन करना। आपको इससे निश्चय होगा कि - "किसी भी सुपात्र को आश्रय देने से दुःखी मनुष्य और प्राणी को दुःख से मुक्त करने से कितनी पुण्य लक्ष्मी प्राप्त की जा सकती है ? यदि यह दृढ़ निश्चय, आपके मन में हमेशा के लिए हो गया तो आपकी परोपकार वृत्ति को सदा पुष्टि ही मिलती रहेगी। यह वृत्ति आपको उन्नति की ओर ले जायगी। इसे प्राप्त करने की पूर्ण अभिलाषा आपके हृदय में पहिले से उत्पन्न होनी चाहिए। आप यह जानते हैं कि जब तक किसी वस्तु को पाने की तीव्र इच्छा मनुष्य के हृदय में नहीं होती तब तक उस वस्तु को पाने के लिए जितना प्रयत्न होना चाहिए उतना प्रयत्न उससे नहीं होता है। इसलिए, आप में तन, मन और धन से परोपकार करने की प्रवृत्ति हो, ऐसी तीव्र धारणा आपको रखनी चाहिए। ऐसे धर्मवीर तथा परोपकारी धर्मवीर पुरुषों के चरित्र भी वैसी ही पवित्र वृत्ति का बोध कराने में पूर्ण साधन रूप होते हैं।

इस बोध-प्रद चरित्र के पात्रों के जीवन से आपको अलग-अगल शिक्षा लेना चाहिए। इस कथा के नायक उत्तमकुमार का साहस सबसे अधिक प्रशंसनीय है। यदि उसने विदेश-भ्रमण करके अपने दिव्य गुणों को प्रकट नहीं किये होते तो उसका उन्नतावस्था को पहुँचना सर्वथा असंभव था। कूएँ के मेढ़क की तरह अपनी भूमि में पड़े रहनेवाले आलसी पुरुषों को उत्तमकुमार के साहस का अनुकरण कर अपने गुणों को प्रकाशित करने की उत्तम शिक्षा लेनी चाहिए। इसके अतिरिक्त मदालसा, तिलोत्तमा और सहस्त्रकला आदि मुख्य नारी-पात्रों ने जो अपने गुण प्रकट किये हैं, वैसे गुणों की प्राप्ति के लिए प्रत्येक श्राविका

को प्रयत्न करना चाहिए।

प्रिय पाठक वृन्द ! इस ज्ञानप्रद चरित्र से आपको जो अच्छा लगे वही ग्रहण करें । इस सांसारिक दुःख को त्यागकर, सर्वदा प्रसन्नता धारण करें ।

आप इस संसार के समस्त उत्तम पदार्थ एवं सद्‌गुणों को प्राप्त करने के अधिकारी हैं । योग्यता, अधिकार, जो भी कहा जाय वह आप ही में हैं । क्योंकि मनुष्य जन्म चिन्तामणि रत्न के समान है, अतः आप भी चिन्तामणि रत्न के समान हैं । जिन गुणों को प्राप्त करने के लिए आप यत्न करोगे उन गुणों को प्राप्त करने का पूर्ण सामर्थ्य आप ही में है।

यह संसार दुःखमय है, इसे त्याग करने की सामर्थ्य शक्ति आप में हो तो संयम को ग्रहण करें । किन्तु कदाच आप में वैसी शक्ति न हो तो उस दुःखमय संसार को सुखमय बनाने का प्रयत्न करें । यदि इस प्रकार प्रयत्न करना हो तो उसका मुख्य साधन ऐसी-ऐसी सत् पुस्तकों का पठन और मनन है । इस प्रकार की पुस्तकों के वांचन और मनन से आप समाज में धर्म और नीति का प्रचार कर सकेंगे एवं दुःखमय संसार को सुखमय बना सकेंगे।

आर्थिक सहयोगी

आचार्यदेव श्री विद्याचन्द्र सूरीश्वरजी के शिष्य एवं मुनिराज श्री रामचन्द्र विजयजी म. के कृपापात्र मुनिराजश्री जयानन्द विजयजी आदि ठाणा की निश्रा में

राष्ट्रसंत आचार्यदेवश्री **जयंतसेनसूरीश्वरजी** के आर्शीवाद एवं वि.सा. **श्री दमयंतीश्रीजी** (हमारे बेन म.) की सुशिष्या वि.सा. **श्री सूर्योदयाश्रीजी** आदि ठाणा की शुभ प्रेरणा से

वि.स. २०६५ जेठ वद१२ गुरुवार ता.२१-५-०९ से जेठसुद ५ गुरुवार ता. २८-५-०९ तक श्री जिनेन्द्र भक्ति महोत्सव सह पू. पिताजी श्री रीखबचंदजी गुणेशमलजी मातुश्री शांतिदेवी रीखबचंदजी के तप अनुमोदनार्थ महोत्सव पूर्ण होने के उपलक्ष में निम्न पुष्प प्रकाशित करवाया हैं।

जयंतीलाल, गौतमचन्द, मीनादेवी जयंतीलाल, गीतादेवी गौतमचन्द, रोहन, सिद्धार्थ, पूजा, राशी बेटा पोता **रीखबचंदजी गुणेशमलजी भंडारी** थलवाड निवासी।

आर.जी. भंडारी SCHWABE INCOAT

१/२०४ नवजीवन सोसायटी दूसरा माला लेमींग्टन रोड मुंबई नं ८

आर्थिक सहयोगी

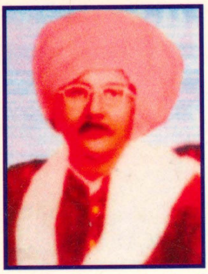

स्व. श्रीगुणेशमलजी भंडारी

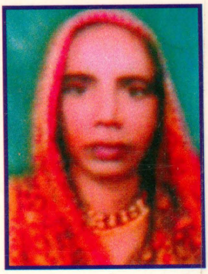

श्रीमति मातृदेवी गणेशमलजी भंडारी

पू. श्री सा. श्री दमयंतीश्रीजी

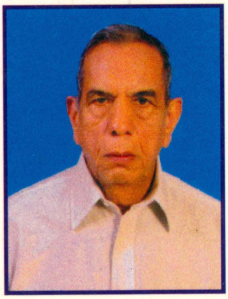

श्री रीखबचंदजी गणेशमलजी भंडारी

श्रीमती शांतिदेवी रीखबचंदजी भंडारी